कुरुक्षेत्र

ऊर्जा के अपारंपरिक स्रोत और ग्रामीण विकास

नव वर्ष हो मुबारक

✍ मोहन चन्द्र मंटन

नये वर्ष में नया हर्ष हो
खेतों में हो हरियाली
झूम-झूम लहराये सरसों
धान और गेहूं की बाली,
नव उमंग में - नवोत्साह से-
खेतों में जाकर अपने
काम किसान करें फिर जो -
पूरे हों खेती के सपने,
माटी उगले सोना, फसलें -
चमत्कार वह दिखलाएं
है किसान भी कलाकार -
मिट्टी में वैभव चमकावे।
यही सफलता की कुंजी हो,
मेहनत को मिलती पूंजी हो।
किया काम जा सके न खाली
हरियाली में हो खुशहाली,
नये वर्ष में यही हर्ष हो
तुम्हें मुबारक नया वर्ष हो।

ई-216 टाइप-1, क्वार्टरस,
मोती बाग-1 नई दिल्ली-110021

NIRMAN

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 3 पौष-माघ 1916, जनवरी 1995

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी

उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	पी० एन० बुलकुंडे
आवरण सज्जा	:	अलका नय्यर

एक प्रति : तीन रुपये   वार्षिक चंदा : 30 रुपये

फोटो साभार : रमेश चंद्र फोटो प्रभाग, ग्रामीण विकास मंत्रालय

इस अंक में

अपारंपरिक ऊर्जा : असीम संभावनाएं	डा० हूकुम चन्द्र जैन	3
ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोत और ग्रामीण विकास	सुभाष चन्द्र 'सत्य'	5
ऊर्जा के अक्षय भण्डार हैं वन और खलिहान	जितेन्द्र गुप्त	8
संभावनाओं की तलाश (कहानी)	डा० विमला उपाध्याय	12
ग्रामीण विकास में अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का योगदान	डा० (कु०) पुष्पा अग्रवाल	14
पवन ऊर्जा के बढ़ते आयाम	धनंजय चोपड़ा	18
बच्चों के अधिकार	रामबिहारी विश्वकर्मा	20
वैकल्पिक ऊर्जा : आवश्यकता और विकास	डा० गजेन्द्र पाल सिंह	25
भेड़ पालन : एक लाभदायक व्यवसाय	गंगाशरण सैनी	28
ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका	सत्यपाल मलिक	32
ग्रामीण विकास में परिवहन साधनों की भूमिका	डा० शिवा कान्त सिंह	34

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

पाठकों के पत्र

कुरुक्षेत्र का सितम्बर 94 अंक प्राप्त हुआ। इस अंक का प्रत्येक लेख "ग्रामीण विकास" के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस अंक में श्री नवीन पंत जी ने ठीक ही लिखा है कि आज भारतीय महिलाएं घर-गृहस्थी का पूरा काम-काज निपटाने के साथ-साथ राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में यथा—खेतों-खलिहानों, कल-कारखानों, दफ्तरों और अस्पतालों आदि में अपना उपयोगी योगदान देती हैं। हमारी कृषि अर्थ-व्यवस्था में तो महिलाओं का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय है ही। ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं कृषि कार्यों में पुरुषों की काफी सहायता करती हैं। पंचायती संस्थाओं की ये महिला सदस्याएं अपने पुरुष साथियों के साथ मिलकर गांवों की विकास योजनाएं बनाती हैं और विकास खंड तथा जिला योजनाओं के निर्माण के लिए उपयोगी और रचनात्मक सुझाव देती हैं। सच तो यह है कि गांवों के विकास में जितना महत्वपूर्ण योगदान महिलाएं करती हैं उतना पुरुष नहीं कर सकते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ग्रामीण विकास में महिलाओं की भागीदारी वांछनीय है।

कहानी 'ममता' पसंद आयी। 'ओखदे' जी बधाई के हकदार हैं। अनीता जोशी, डा. अलका कुशवाहा, मोहनदास नैमिशराय एवं वेदप्रकाश अरोड़ा जी के रचित लेख ग्रामीण विकास में अपनी खास भूमिका अदा करेंगे। लेखकगण बधाई के पात्र हैं। सही मायने में यह अंक "ग्रामीण विकास में महिलाओं की भागीदारी" का विशेषांक है।

कैलाश केशरी,
धर्मस्थान रोड,
पो. जिला–दुमका,
पिन कोड - 814101 (बिहार)

सितम्बर 1994 का कुरुक्षेत्र अंक पढ़ा। प्रस्तुत अंक में महिला विकास से सम्बन्धित सरकारी योजनाओं की विस्तृत जानकारी दी गई है। सभी आलेख अपने आप में अद्वितीय हैं। प्राथमिकता के क्रम में रखना बड़ा ही कठिन है। तथापि अनीता जोशी की "युवा महिलाओं के सर्वांगीण विकास की एक योजना" विशेष प्रशंसनीय है। इसमें परियोजना के तौर पर विकास की बात की गई है।

दूसरी ओर वेद प्रकाश अरोड़ा की प्रस्तुति "कापार्ट ने ग्राम विकास के नए कपाट खोले" संग्रहणीय है। कापार्ट वास्तव में ग्रामीण विकास में संलग्न ग्रामीण विकास की सर्वाधिक सक्रिय परिषद है जो देश में कार्यरत विभिन्न स्वैच्छिक संगठनों का मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन कर ग्रामीणों को विकास का अवसर प्रदान कर रही है।

सुधीर 'ओखदे', पूरन सरमा, रामस्वरूप जोशी एवं अखिल कुमार नामदेव ने अपनी लघु कथाओं के माध्यम से काफी असर डाला है।

डा. एम. एम. साह,
सी-17, पत्रकार नगर, कंकर बाग,
पटना - 800020

आपके ग्रामीण विकास के प्रति समर्पण को जितना भी सराहा जाए, कम ही होगा। कुरुक्षेत्र के प्रत्येक अंक में प्रकाशित कहानी ग्रामीण जनता के अंधविश्वास को समाप्त करने में अहम भूमिका निभाती है तथा इसके लेख ग्रामीण विकास में चौमुखी सहायता प्रदान करते हैं। छात्रों को उपयोगी आंकड़े तथा विषय का विश्लेषणात्मक विवरण उपलब्ध होता है।

इसकी कीमत ग्रामीणों और बेरोजगारों पर कोई भार नहीं पड़ने देती है। इसलिए यह ग्रामीणों के साथ छात्रों की भी प्रिय पत्रिका है। आपके अगस्त 94 अंक में "अपना गांव, अपना काम" शीर्षक का लेख एक मील का पत्थर साबित होगा।

अखिलेश रंजन,
99, परमानन्द कालोनी,
दिल्ली-9

अपारंपरिक ऊर्जा : असीम संभावनाएं

✍ डा० हुकुम चन्द्र जैन

प्रति व्यक्ति ऊर्जा के उपभोग की दर किसी भी देश के विकास का एक प्रमुख मानक है। नगरीय और ग्रामीण जीवन को समुन्नत बनाने में ऊर्जा की महत्वपूर्ण भूमिका है। आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलाजी का उपयोग ऊर्जा पर ही आधारित है। ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोतों में सूर्य, वायु, जैव पदार्थ, जल, भूगर्भीय ताप और समुद्र आदि मुख्य हैं। विश्व में ऊर्जा के बढ़ते संकट को देखते हुए दुनिया भर की आंखें ऊर्जा के अपारंपरिक स्रोतों की ओर लगी हुई हैं। किसी ने यह गलत नहीं कहा कि इस संसार की जड़ें आकाश में हैं। यदि आज इस धरती पर जीवन है तो सौर ऊर्जा, वर्षा और वायु के कारण। सूर्य विश्व का सबसे बड़ा पावर हाऊस है अर्थात ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है। एक मोटे अनुमान के अनुसार सूर्य प्रतिदिन धरती को लगभग 75,000 खरब किलोवाट सौर ऊर्जा प्रदान करता है। इस ऊर्जा का मात्र 0.1 प्रतिशत ही पूरे विश्व की ऊर्जा संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है।

भारत में औसतन पांच किलोवाट प्रति वर्ग मी. विकिरण ऊर्जा सूर्य से मिलती है जो वर्ष में औसतन 300 दिन प्राप्त होती है। इस तरह भारतीय उपमहाद्वीप में 5×10^{15} किलोवाट सौर विकिरण ऊर्जा प्रतिवर्ष प्राप्त होती है। अब यह हमारी क्षमता पर निर्भर है कि इस सौर ऊर्जा का कितना भाग हम उपयोग कर पाते हैं।

सौर ऊर्जा को विभिन्न प्रकार के उपकरणों से तापीय ऊर्जा के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। घरों में पानी गरम करने से लेकर होटलों, दुग्धशालाओं, अस्पतालों और बड़े-बड़े उद्योगों के लिए गर्म जल की आपूर्ति और खाना पकाना तक सौर ऊर्जा से संभव है। भारत में अब तक प्रतिदिन सौर ऊर्जा से 1.2 करोड़ लीटर जल गर्म करने की क्षमता प्राप्त कर ली गई है और देश में 60 हजार सोलर पी.वी. उपकरण लगाए हैं। भारत में एशिया के पहले कार्यात्मक सौर तालाब का उद्घाटन किया गया है। भविष्य में 10 लाख सोलर लालटेन, सोलर बेबी कारें और सिंचाई हेतु 50 हजार पम्प सौर ऊर्जा से चलाए जा सकेंगे। सोलर कुकर एक अन्य साधन है जिससे ईंधन की बड़ी मात्रा में बचत की जा सकती है और लाखों लोग खाना पका सकते हैं।

सौर ऊर्जा से अनेक लाभ हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

- सौर ऊर्जा उपकरणों को लगाने और चलाने में कोई जटिलता नहीं होती।
- सौर ऊर्जा यंत्रों और उपकरणों पर लगाई गई पूंजी 5 से 6 वर्ष में वसूल हो जाती है।
- इससे ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों जैसे पेट्रोल, खाना पकाने वाली गैस, कोयला-लकड़ी आदि की बचत होती है। परम्परागत स्रोतों की एक सीमा है। अतः इनका खर्च काफी मितव्ययिता से करना चाहिए क्योंकि इन्हें पुनः प्राप्त करना कठिन है।
- सौर ऊर्जा के उपकरणों के रख-रखाव में बहुत कम खर्च आता है। इस कारण आम व्यक्ति भी इन्हें लगवा सकता है।
- इसमें जन शक्ति की बहुत कम जरूरत होती है।

ऊर्जा के परम्परागत स्रोत धीरे-धीरे खत्म हो रहे हैं। दूसरी ओर लकड़ी और खनिज तेल आदि के प्रयोग से प्रदूषण की समस्या अत्यधिक गंभीर होती जा रही है। इस दृष्टि से भी पारंपरिक ऊर्जा की तुलना में अपारंपरिक ऊर्जा प्रदूषण मुक्त है और इसके स्रोत भी असीम और अक्षम हैं।

जल विद्युत अपारंपरिक ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। विश्व में ब्राजील के बाद सर्वाधिक वर्षा भारत में होती है। हमारे देश ने 110 मेगावाट जल विद्युत की क्षमता प्राप्त कर ली है जबकि 200 मेगावाट के संयंत्र निर्माणाधीन हैं तथा देश भर में 2000 स्थानों का चयन 500 मेगावाट क्षमता वाले संयंत्र लगाने के लिए किया गया है। इसी तरह देश में पवन ऊर्जा के दोहन हेतु कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इस दिशा में अभी तक 71 मेगावाट क्षमता प्राप्त कर ली गई है और निजी क्षेत्र में भी इस स्रोत से विद्युत उत्पादन की योजना है। राष्ट्रव्यापी पवन सर्वेक्षण कार्यक्रम चल रहा है। भूगर्भीय ताप और समुद्र जल से भी ऊर्जा दोहन के अनेक प्रयोग चल रहे हैं। देश में यदि अपारंपरिक ऊर्जा के स्रोतों का ठीक से दोहन किया जाए तो भी देश ऊर्जा के मामले में आत्म-निर्भर बन सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा के अपारंपरिक स्रोतों के अधिकाधिक उपयोग के लिए समन्वित ग्रामीण ऊर्जा कार्यक्रम के अन्तर्गत देश के 450 विकास खंडों में कार्य चल रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में अब तक 19 लाख बायोगैस संयंत्र लगाए गए हैं जबकि आठवीं योजना के अन्त तक 10 लाख और संयंत्र लगाए जाने का लक्ष्य है। इसी तरह देश में 167.5 लाख उन्नत चूल्हे लगाए गए और इस योजना के अन्त तक कुल 180 लाख चूल्हे लगाने का प्रावधान रखा गया है। अपारंपरिक ऊर्जा के विकास हेतु अनेक अर्न्तराष्ट्रीय संगठन कार्य कर रहे हैं और एशिया विकास बैंक और विश्व बैंक वित्तीय सहायता प्रदान कर रहे हैं इस दिशा में 'गलोबल इनवायरनमेंट ट्रस्ट फन्ड' भी सक्रिय है।

लगभग दो दशक पूर्व खाड़ी देशों द्वारा तेल को राजनीति का एक हथियार बनाने से उत्पन्न तेल संकट ने पाश्चात्य देशों के कान खड़े कर दिए क्योंकि प्रति व्यक्ति ऊर्जा का उपभोग इन्हीं देशों में सर्वाधिक है। संयुक्त राज्य अमरीका, जापान और यूरोप के विभिन्न देश विश्व की कुल ऊर्जा का आधा भाग उपभोग करते है। सन् 1973 से जापान ने ऊर्जा की बचत की ओर ध्यान केन्द्रित किया। ऊर्जा के सामान्य घरेलू उपभोग के अलावा जापान ने अपने उद्योगों में ऊर्जा की बचत करने वाली तकनीक के प्रयोग हेतु पहल की।

भूगर्भीय ताप से पृथ्वी की सतह के नीचे बनाए गए मकान गर्म बने रहते है। अमरीका में सत्तर के दशक के आसपास "पेसिव सोलर डिजाइन" की अवधारणा ने जन्म लिया और मकान निर्माण के क्षेत्र में एक नई अवधारणा विकसित हुई। भूमिगत मकानों का निर्माण तेजी से बढ़ रहा है। अमरीका के कोलेरेडो में "क्लिफपैलेस" भूमिगत संरचना है जहां पांच सौ व्यक्ति निवास करते हैं। छोटे मकानों में सौर ऊर्जा का उपयोग सरल है जबकि बड़ी इमारतों में इसके लिए उन्नत तकनीक की आवश्यकता है। अमरीकी वास्तुकार इस दिशा में सक्रिय रूप से जुटे हुए हैं। इसके अलावा चीन, जापान, फिलीपीन्स, भारत और अफ्रीका में भी अपारंपरिक ऊर्जा से मानवीय जीवन को आरामदेह बनाने की दिशा में अनेक योजनाएं तैयार की जा रही हैं। वस्तुतः पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देना है तो मनुष्य को प्रकृति के साथ ताल-मेल बैठाना ही पड़ेगा।

प्रौढ़ सतत शिक्षा विभाग,
डा० हरीसिंह गौर विश्व-विश्वविद्यालय,
सागर, पिन - 470003

सौर ऊर्जा से गांव में रोशनी

पश्चिम बंगाल के बांकुरा जिले में बोंगोपालपुर नाम का एक जनजातीय गांव सौर ऊर्जा से बिजली पाने वाले देश के हजारों गांवों में से एक बन गया है। यह गांव, राज्य विद्युत ग्रिड से लगभग 17 किलोमीटर दूर है अतः यहां पर पारंपरिक ढंग से बिजली की सुविधा उपलब्ध कराना कठिन था। लेकिन सौर ऊर्जा से संचालित फोटोवोल्टाइक ऊर्जा संयंत्र ने यह कार्य संभव बना दिया है।

गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोत राज्यमंत्री, श्री एस. कृष्ण कुमार ने 12.5 किलोवाट का एक सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा संयंत्र इस गांव को सौंपते हुए कहा कि उनका मंत्रालय देश में पुनरोपयोगी ऊर्जा क्षेत्र को विकसित करने के लिए लगातार कई बहुआयामी कार्यक्रमों पर काम कर रहा है ताकि विश्व में पुनरोपयोगी ऊर्जा आंदोलन में भारत के अग्रणी बनने की माननीय प्रधानमंत्री की कल्पना को साकार किया जा सके। उन्होंने कहा कि उनका मंत्रालय आठवीं योजना के अंत तक पुनरोपयोगी ऊर्जा स्रोतों से 2000 मेगावाट ऊर्जा पैदा करने के काम में प्रयासरत है। इसमें से 25 मेगावाट क्षमता फोटोवोल्टाइक प्रणाली से पैदा की जाएगी। उन्होंने यह भी बताया कि सरकार की सौर लालटेनों को लोकप्रिय बनाने की भी योजना है। आशा की जाती है कि आठवीं योजना के अंत तक देश में चार लाख सौर लालटेनें प्रयोग में लाई जाने लगेंगी। उन्होंने बताया कि पश्चिम बंगाल सरकार के प्रस्ताव पर उनके मंत्रालय ने सागर द्वीप समूह पर 25 किलोवाट के सौर फोटोवोल्टाइक ऊर्जा संयंत्र की स्थापना के लिए वित्तीय सहायता की स्वीकृति प्रदान कर दी है।

साभारः पत्र सूचना कार्यालय

परम्परागत स्रोत और ग्रामीण विकास

सुभाष चन्द्र 'सत्य'

अर्थ के अनुरूप आज के मानव-जीवन की है। अपने विभिन्न रूपों में ऊर्जा मनुष्य ाए रखने की बुनियादी आवश्यकता बन गई है। उद्योग, कृषि, घरेलू उपयोग, परिवहन आदि सभी आधारभूत आर्थिक क्षेत्रों का संचालन आज ऊर्जा के बिना असंभव है। इन गतिविधियों को गतिमान बनाए रखने में बिजली, कोयला और पेट्रोलियम का प्रमुख योगदान है। इसके अलावा परमाणु ऊर्जा का इस्तेमाल भी दिनोंदिन बढ़ रहा है। किन्तु ऊर्जा के इन परंपरागत साधनों की अपनी सीमाएं है। पहली बात तो यह है कि इन सब स्रोतों के भण्डार कुछ सौ वर्षों वाद समाप्त होने की सम्भावना है। जितनी तेजी से विश्व की, विशेष रूप से विकासशील देशों की, आबादी बढ़ रही है, उतनी ही तेजी से ऊर्जा की खपत बढ़ रही है और उसी के अनुरूप कोयला, पेट्रोलियम, गैस जैसे कार्बन पदार्थों के भण्डार समाप्त हो रहे हैं। इन स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा का एक अन्य पहलू यह है कि इन परियोजनाओं के लिए बड़े पैमाने पर पूंजी निवेश की आवश्यकता है, जो भारत जैसे गरीब देश के लिए बहुत बड़ी बाधा है। तीसरा और अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इन स्रोतों से पर्यावरण के लिए गंभीर खतरा पैदा हो रहा है और प्रदूषण के कारण मनुष्य का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है।

इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए समूचे विश्व में ऊर्जा के अपारंपरिक ऊर्जा स्रोतों के विकास पर ध्यान दिया जा रहा है। भारत में अपारंपरिक ऊर्जा स्रोतों का विकास और भी उपयोगी है क्योंकि हमारे यहां इन स्रोतों का विपुल भण्डार मौजूद है। हमारे देश में बिजली तथा ऊर्जा के अन्य परंपरागत साधनों के उल्लेखनीय विकास के बावजूद आज भी ऊर्जा की कुल जरूरत का लगभग 50 प्रतिशत भाग जलावन, खेती-बाड़ी से बचे बेकार पदार्थों और पशुओं के गोबर से पूरा होता है। लगभग समूचे ग्रामीण क्षेत्र तथा कुछ शहरी इलाकों में ऊर्जा की कुल खपत का करीब आधा हिस्सा इन्हीं पदार्थों से प्राप्त होता है।

राष्ट्रीय ऊर्जा नीति

देश के ऊर्जा साधनों के व्यवस्थित और संतुलित विकास के उद्देश्य से भारत सरकार ने ऊर्जा नीति तैयार की है। इसमें ग्रामीण स्रोतों की ऊर्जा संबंधी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए ऊर्जा के बार-बार इस्तेमाल हो सकने वाले स्रोतों के विकास और इस्तेमाल पर बल दिया गया है। इसमें यह भी कहा गया है कि ऊर्जा के नए बार-बार इस्तेमाल हो सकने वाले स्रोतों के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास गतिविधियों में तेजी लाई जाएगी। इस क्षेत्र में लगे लोगों के प्रशिक्षण पर भी विशेष ध्यान दिया जाएगा। हमारे देश में 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में ही रहती है। उनके लिए ऊर्जा के इन गैर परम्परागत स्रोतों के विकास का बहुत अधिक महत्व है। इन स्रोतों के इस्तेमाल से कोई प्रदूषण की समस्या नहीं है और इनका विकास छोटे तथा विकेन्द्रीकृत स्तर पर किया जा सकता है। इनके लिए कच्चे माल के रूप में काम में लाए जाने पदार्थ गांवों में ही आसानी से और सस्ती दरों पर उपलब्ध हैं। इनके लिए बड़े पैमाने पर पूंजी की आवश्यकता नहीं पड़ती। गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का तेजी से विकास इसलिए भी आवश्यक है कि व्यावसायिक ऊर्जा की कुल खपत में वृद्धि के बावजूद ऊर्जा की प्रति व्यक्ति खपत की दृष्टि से भारत अन्य देशों से बहुत पीछे है इसका कारण यह है कि परंपरागत ऊर्जा की खपत मुख्य रूप से शहरों और महानगरों तक ही सीमित है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा नियोजन

पिछली अनेक पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की खपत बढ़ाने तथा उसमें संतुलन लाने के उद्देश्य से इस दिशा में वैज्ञानिक तथा तार्किक आधार पर अध्ययन करके विस्तृत योजनाएं बनाने के प्रयास किए गए हैं। इसमें मुख्य पहलू यह उभर कर आया है कि ऊर्जा के क्षेत्र में विकेन्द्रीकृत स्तर पर योजना बनायी जानी चाहिए तथा उपलब्ध स्रोतों का अधिक से अधिक वितरण तथा उपयोग किया जाना चाहिए। इसके अलावा निम्नलिखित महत्वपूर्ण पहलुओं को उपयोगी पाया गया है :

- प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता का पता लगाना।
- ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के विभिन्न घटकों में ऊर्जा के उपयोग के मौजूद तरीकों का मूल्यांकन तथा नए तरीकों की खोज करना।

- ऊर्जा की भावी मांग तथा विकेन्द्रीकृत स्तर पर उसके विकास की योजना बनाने और उसके क्रियान्वयन के उपायों का पता लगाना।
- ऊर्जा विकास को जिले की विकास योजना का अंग बनाना।

ईंधन की कमी तथा पेड़ों की अंधाधुंध कटाई को देखते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा संबंधी योजना बनाना और भी जरूरी हो गया है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि स्थानीय आवश्यकताओं तथा उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप स्रोतों का उपयोग और विकास हो सकेगा और अतिरिक्त संसाधनों का इस्तेमाल अन्यत्र किया जा सकेगा।

गैर परम्परागत स्रोत

सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और बायोगैस, ऊर्जा के बार-बार इस्तेमाल हो सकने वाले प्रमुख स्रोत हैं। इन सभी स्रोतों से बड़े पैमाने पर ऊर्जा प्राप्त करके ग्रामीण क्षेत्रों का कायापलट हो सकता है। किन्तु इनके अलावा और भी अनेक साधन हैं जिनसे छोटे स्तर पर ऊर्जा का उत्पादन संभव है। इनमें भूतापीय ऊर्जा, समुद्री लहरों की ऊर्जा, फोटोवोल्टिक ऊर्जा, जैव ऊर्जा आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं। इन स्रोतों से अभी व्यावसायिक स्तर पर ऊर्जा प्राप्त नहीं हो पाई है परन्तु इस दिशा में अनुसंधान कार्य पूरी गंभीरता से चल रहे हैं। ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के विकास और इस्तेमाल के साथ-साथ परंपरागत उपकरणों में सुधार लाकर भी ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की खपत को युक्तिसंगत तथा और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए खाना पकाने के चूल्हों, रोशनी के लैम्पों की तकनीक और बनावट में सुधार लाकर और सौर कुकरों के इस्तेमाल को बढ़ावा देकर गांवों में ऊर्जा संबंधी कठिनाइयों को कम किया जा सकता है। किन्तु जिस एक स्रोत से भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा के परिदृश्य में क्रांतिकारी परिवर्तन आ सकता है वह है सौर ऊर्जा।

सौर ऊर्जा के विविध उपयोग

सूर्य पृथ्वी पर जीवन का स्रोत होने के साथ-साथ सभी प्रकार की ऊर्जाओं का भी स्रोत है। इसे विशाल परमाणु रिएक्टर कहा गया है जिसमें हाइड्रोजन लगातार उच्च तापमान पर जलती रहती है। हालांकि सूर्य से उपलब्ध ऊर्जा या धूप की मात्रा मौसम तथा दिन-रात के हिसाब से घटती-बढ़ती है किन्तु हमारे देश में पर्याप्त मात्रा में धूप उपलब्ध हो... के कामों में भी भरपूर इस्तेमा... तरीके है :-

(1) सौर ऊर्जा को ताप ऊर्जा में परिवर्ति...

(2) सौर वितरित ऊर्जा को फोटोवोल्टिक विधि से सी... ऊर्जा में बदलना।

ताप ऊर्जा में परिवर्तित सौर ऊर्जा खाना पकाने के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। हमारे यहां इसके लिए दो तरह के सौर कुकर विकसित किए गए है। बक्से के आकार के सौर कुकर में चपातियां पकाने तथा तलने को छोड़कर रसोई के सारे काम किए जा सकते हैं। भोजन पकाते समय इसे खुले में धूप में रखना पड़ता है। किन्तु दूसरे प्रकार के कुकर में परावर्तित ऊर्जा को रसोई तक ले जाया जा सकता है तथा उससे अंदर ही खाना पकाया जा सकता है। गांव के वातावरण में बक्से वाले कुकर भी काफी उपयोगी हो सकते हैं।

सौर ऊर्जा पानी गर्म करने के लिए व्यापक रूप से इस्तेमाल की जा सकती है। पानी गर्म करने के लिए तो सौर ऊर्जा का होटलों और अनेक बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों में भी उपयोग किया जा रहा है। इस विधि पर परंपरागत साधनों की तुलना में खर्च भी कम बैठता है और प्रदूषण की कोई समस्या ही नहीं है। इसके अलावा हवा गर्म करके अनाज, फलों, सब्जियों, मछलियों, रसायनों आदि को सुखाने, सर्दियों में इमारतों को गर्म रखने तथा लकड़ियों को सीजन करने अर्थात मजबूत बनाने जैसे कार्यों के लिए भी सौर ऊर्जा इस्तेमाल की जाती है।

यही नहीं, जिन क्षेत्रों के पानी में खारापन होता है वहां तापीय वाष्पीकरण की प्रक्रिया से पानी को शुद्ध किया जा सकता है। इससे पीने के पानी की समस्या हल करने के साथ-साथ भूमि की उर्वरकता बढ़ाने में भी मदद मिलती है। सोलर हीटर के माध्यम से अस्वच्छ जल को स्वच्छ बनाया जा सकता है।

खाद्य पदार्थों को खराब होने से बचाने के लिए सौर प्रशीतन की विधि से ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में ठोस परिवर्तन हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सौर ऊर्जा से चलने वाले कोल्ड स्टोरेज बन जाने से किसानों को गोदामों के अभाव में अपने उत्पाद मजबूरी में सस्ते बेचने की परेशानी से मुक्ति मिल जाएगी और वे अपनी

सुविधा व लाभ-हानि की दृष्टि से सही समय पर अपने उत्पाद बेचकर अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकेंगे। सौर ऊर्जा का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग है बिजली उत्पादन। तापीय माध्यम से कई सौ मेगावाट तक बिजली पैदा की जा सकती है। 13 नवम्बर 1994 को गैर परंपरागत ऊर्जा मंत्री श्री कृष्ण कुमार ने पश्चिम बंगाल के बांकुरा जिले में इस तरह का बिजलीघर किसानों को समर्पित किया। ग्रामीण क्षेत्रों में सौर ऊर्जा से चलने वाले बिजली घर बनाने की दिशा में विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। सिंचाई के लिए पानी निकालने में भी सौर ऊर्जा का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। 50 मीटर तक गहराई से पानी निकालने के पम्प देश में विकसित हो चुके हैं तथा इससे अधिक गहराई से पानी निकालने वाले पम्प तैयार करने की दिशा में अनुसंधान जारी है।

बायोगैस

बायोगैस ऊर्जा का कभी खत्म न होने वाला ऐसा स्रोत है जो ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से उपयोगी हो सकता है क्योंकि इसमें कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होने वाली सारी सामग्री गांवों में बहुतायत में उपलब्ध है। इसकी तकनीक भी बहुत सरल और सस्ती है। विभिन्न राज्यों में बायोगैस के अनेक प्रकार के संयंत्र विकसित किए गए हैं जिनमें से कुछ बड़े संयंत्र सामुदायिक अथवा व्यावसायिक स्तर के हैं तथा कुछ व्यक्तिगत उपयोग या एक परिवार की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। महिलाओं के लिए तो बायोगैस वरदान है क्योंकि इससे खाना पकाने के लिए धुएं में अपनी आंखें फोड़ने, जलावन एकत्र करने के झंझट और गंदगी फैलने की मुसीबत से छुट्टी मिल जाती है। इसमें खाना पकाने तथा घर के दूसरे काम निपटाने में समय की काफी बचत हो जाती है। इससे महिलाएं अपना समय बच्चों की देखभाल और दूसरे उपयोगी कार्यों में खर्च कर सकती हैं।

अपारंपरिक ऊर्जा मंत्रालय ने बायोगैस को लोकप्रिय बनाने के लिए राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना चला रखी है। इसके अंतर्गत लोगों को अनुदान और ऋण उपलब्ध कराए जाते हैं और तकनीकी प्रशिक्षण दिया जाता है जिसके लिए चौदह क्षेत्रीय बायोगैस प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए हैं। मोटे अनुमान के अनुसार देश में लगभग 30,000 घरेलू बायोगैस संयंत्र काम कर रहे हैं। सुलभ इंटर नेशनल जैसी अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं भी बायोगैस विधि को लोकप्रिय बनाने में जुटी हुई हैं। बायोगैस तैयार करने के दौरान अवशिष्ट पदार्थों से भी जैव ऊर्जा बनाने की विधि विकसित करने पर काम हो रहा है।

पवन ऊर्जा

सौर ऊर्जा की तरह पवन ऊर्जा भी प्रकृति की सीधी देन है। विश्व के अनेक देशों में पवन ऊर्जा का विभिन्न कार्यों में भरपूर उपयोग किया जा रहा है। हमारे देश में ग्रामीण, पर्वतीय तथा दूर दराज के क्षेत्रों में पवन ऊर्जा लोगों के जीवन को सुखी बनाने तथा उनके सामाजिक-आर्थिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। पवन ऊर्जा की व्यापक संभावनाओं के बावजूद इस दिशा में अभी तक की प्रगति संतोषजनक नहीं है। 1992 तक देश में 151 डीप विंड पम्प स्थापित किए गए थे और 89 पम्पों पर काम चल रहा था। पवन ऊर्जा के विकास के लिए एक राष्ट्रीय कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिसके तहत आठवीं योजना में 500 मेगावाट तक पवन ऊर्जा की क्षमता प्राप्त करने का लक्ष्य है। इस काम में अब निजी क्षेत्र का भी सहयोग लिया जा रहा है।

ऊर्जा के इन सभी गैर परंपरागत स्रोतों से ग्रामीण जीवन में निश्चित रूप से सुधार होगा और साथ ही आज के युग की और भविष्य की सबसे भीषण समस्या, प्रदूषण से मुक्ति मिलेगी। अतः इन स्रोतों के विकास की दिशा में सरकारी और गैर सरकारी दोनों स्तरों पर प्रयास किए जाने चाहिए। केन्द्र सरकार ने इस क्षेत्र के महत्व को देखते हुए अलग से अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय बनाया है। अब निजी क्षेत्र और स्वयंसेवी संस्थाओं के भी सक्रिय हो जाने से लगता है कि इस दिशा में हमारे कदम पहले से कहीं ज्यादा तेजी से आगे बढ़ेंगे।

1370, सैक्टर –12,
आर. के. पुरम,
नई दिल्ली–110022

'कुरुक्षेत्र' परिवार की ओर से पाठकों को नव-वर्ष की शुभकामनाएं।

ऊर्जा के अक्षय भण्डार हैं वन और खलिहान

✍ जितेन्द्र गुप्त

बचपन में दादी एक पहेली बुझाया करती थीं : एक आदमी शहर जा रहा था। उसके पास एक बकरी थी और एक तोता। रास्ते में उसे भूख लगी। पैसे कम थे, इसलिए तीनों के लिए अलग-अलग खाद्य पदार्थ नहीं खरीद सकता था। काफी सोच-विचार के बाद उसने एक फल खरीदा, जिसे खाकर तीनों प्राणियों ने चैन की सांस ली। अब बच्चो, बताओ, कौन-सा फल था?

वह फल था तरबूज। यात्री ने उसका लाल गूदा खाया। बकरी ने सफेद गूदे सहित मोटा छिलका और तोते ने बीज।

आज आप भी एक पहले बूझिए। रसोई ऊर्जा (खाना पकाने का साधन), उर्वरक, चारे और औद्योगिक कच्चे माल की समस्या के समाधान के लिए कौन-सा उपाय किया जाए जो महंगा भी न हो और न विदेशों का मुंह ताकना पड़े।

नगर निवासी कह सकता है कि तरल पेट्रोलियम गैस (एल. पी. जी.) यानी रसोई गैस प्रचुरता से मिलने लगे तो पकाने की ऊर्जा और उर्वरकों का बंदोबस्त हो जाएगा और तब कृषिजन्य औद्योगिक कच्चे माल की भी तंगी नहीं रह जाएगी। इस उत्तर में एक खोट है, इसलिए यह सही नहीं है। देश में रसोई गैस की कुल खपत का काफी बड़ा हिस्सा विदेशों से आता है और एक सिलेण्डर पर सरकारी सब्सिडी 30-40 रुपये है। शहरों और बड़े कस्बों से बाहर उसे उपलब्ध कराना हो तो अरबों रुपये का घाटा सरकार को होगा। किरोसन तेल और कोयला भी गरीब ग्रामवासी की समस्या का समाधान नहीं कर सकते।

सही उत्तर है जैविक पदार्थों का उत्पादन बढ़ाया जाए। यह हमारी सामर्थ्य के अंदर है। इन स्रोतों से खाना पकाने की ऊर्जा ही नहीं मिलेगी वरन गोबर खाद के रूप में ज्यादा इस्तेमाल हो सकेगा, भूक्षरण और पर्यावरण का प्रदूषण भी रुकेगा।

जैविक पदार्थों से हमारा तात्पर्य वन सम्पत्तियों से है—वृक्षों, वनों और खेती की उन्नति से है। इनके लिए आर्थिक साधन चाहिए, मगर इतने नहीं कि उनका जुगाड़ न किया जा सके। गांव वालों के संकल्प और उनके सीमित साधनों से लगभग हर गांव या समूह को रसोई ऊर्जा, चारे, इमारती लकड़ी और अनाज के मामले में आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है। जहां ऐसी कोई सरकारी योजना नहीं चल रही या पर्याप्त मदद नहीं मिल रही, वहां के लोग उन अनेक क्रांतिकारी प्रयोगों से प्रेरणा ले सकते हैं जिन्होंने गांवों को खुशहाल बना दिया है।

यहां प्रसंग ऊर्जा का है और उसमें भी जैव पदार्थों से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का। फिर भी खेती, वन और खुशहाली का जिक्र आ गया तो सिर्फ इसलिए कि ऊर्जा के प्रश्न को अलग खाने में रखकर नहीं देखा जा सकता। वह हर क्षेत्र के स्थानीय पर्यावरण से जुड़ा प्रश्न है—कटा हुआ नहीं।

केवल ऊर्जा की ही बात करें तो कुल खपत के आंकड़े बताते हैं कि कोयला, प्राकृतिक गैस, खनिज तेल (किरोसिन, पेट्रोल, डीजल), पन बिजली और परमाणु बिजली की हिस्सेदारी केवल 47 प्रतिशत है। ये पूंजी बहुल साधन हैं। इनकी परियोजनाएं दीर्घकालिक होती हैं।

हमें आधी से अधिक ऊर्जा वनस्पति जगत से, जैविक पदार्थों से प्राप्त होती है — पेड़ों से मिली जलावन लकड़ी, झाड़-झंखाड़, गोबर के उपले या कंडे, फसलों के ठंडल आदि। जो परिवार जलावन नहीं खरीद पाते उनकी औरतें पेड़ों की सूखी शाखाओं, टहनियों आदि की तलाश में घंटों भटकती हैं। जलावन की लकड़ी के स्रोत सूखते जा रहे हैं — वन सिकुड़ रहे हैं और आबादी बढ़ती जा रही है। परिणामस्वरूप औरतों पर काम का अमानवीय बोझ बढ़ गया है। कपड़ा और मकान के साथ रसोई ऊर्जा भी चाहिए ताकि रोटी पक सके। रसोई ईंधन का महत्व मौलिक अधिकार जैसा है। सबसे अधिक तंगी उन परिवारों को है जो भूमिहीन या लगभग भूमिहीन हैं।

हाल ही में दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा सम्मेलन हुआ था जिसमें पर्यावरण मंत्री श्री कमलनाथ ने एक छोटा-सा मासूम, लेकिन चौंकाने वाला सवाल पूछा : जो 40 करोड़ लोग पेड़ों और वनों से शाखाएं और टहनियां काट या बीन-बटोरकर 22 करोड़

टन जलावन हर साल निःशुल्क प्राप्त करते हैं वे अगर रसोई गैस इस्तेमाल करने की स्थिति में आ जाएं तो क्या हम उसकी व्यवस्था कर पाएंगे? ऊर्जा का अंतर्राष्ट्रीय भाव कहां पहुंच जाएगा? क्या मौजूदा टेक्नालोजी और साधन इसमें हमारी मदद करेंगे? ये प्रश्न महत्वपूर्ण हैं सीमित भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय खनिज तेल भंडारों के संदर्भ में।

पिछले 10-15 वर्षों से ऊर्जा के गैर-परम्परागत स्रोतों के विकास की ओर ध्यान दिया जाने लगा है, किन्तु इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं हो पाई है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के दस्तावेज के अनुसार 1992-97 की अवधि में गैर परंपरागत साधनों से 750 से 1000 मेगावाट ऊर्जा प्राप्त की जाएगी। ये स्रोत हैं – पवन ऊर्जा, लघु पन बिजली संयंत्र, शहरी और ग्रामीण कचरे से ऊर्जा, सौर ऊर्जा। किसी भी मानदंड से यह कोई शानदार लक्ष्य नहीं है। इसके अलावा 7.5 लाख नए बायोगैस प्लांट लगाने का लक्ष्य है। सुधरे हुए चूल्हों के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार सब्सिडी भी देती है। फिर भी ये कितने प्रभावशाली या लोकप्रिय साबित हुए हैं, इसके बारे में योजना आयोग स्वयं बहुत आश्वस्त नहीं है।

तकनीकी और वैज्ञानिक तामझाम के बावजूद यह बुनियादी तथ्य है कि ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत जैविक पदार्थ ही हैं। इनकी ओर ध्यान देकर ही सबके लिए जलावन, चारे और अनाज की व्यवस्था की जा सकती है। वित्तीय साधनों से कहीं बड़ी समस्याएं सामाजिक और व्यावहारिक स्तर पर आती हैं। आर्थिक विषमता और संगठन की समस्याएं आड़े आती हैं।

मत्स्य पुराण में एक वृक्ष को दस पुत्रों के बराबर माना गया है। वह छाया, जलावन और जानवरों को चारा ही नहीं देता वरना भूरक्षण रोकता है, मिट्टी और वातावरण में नमी बनाए रखता है। कार्बन डाइ आक्साइड सोखता और आक्सीजन देता है फल-फूल मिलते हैं सो अलग से। इसी तरह खेती खाने के लिए अनाज, कपड़े के लिए कपास, तिलहन, गन्ना, तम्बाकू, दालें, सब्जियां आदि देती है। जैसे-जैसे आबादी और निर्यात की आवश्यकताएं बढ़ती जाएंगी, प्रति एकड़ उपज बढ़ाने की मजबूरी सिर पर सवार होने लगेगी।

वृक्ष या वनरोपण और खेती दोनों ही पानी मांगते हैं। अभी तक हम मुश्किल से केवल एक-तिहाई क्षेत्रफल में सिंचाई की व्यवस्था कर पाए हैं। बड़े बांधों और राजकीय सहायता के मोह में पड़कर जनता और सरकार दोनों जल संग्रह की परंपरागत विधियों को भुला बैठे हैं। तालाबों और स्थानीय रूप से जलसंग्रह क्षेत्रों के विकास को छोटा और घटिया काम मान लिया गया। पंचवर्षीय योजनाओं की खुशफहमी के शिकार बन गए हम और जहां हरित क्रांति के चरण नहीं पड़े वहां की खेती पिछड़ी रह गई। जंगल कट कर चूल्हों-भट्टियों में जले गए या छोटी बड़ी इमारतों में खपते जा रहे हैं। सन् 1951 के बाद 40 वर्षों में देश का वन क्षेत्र आधा रह गया। वृक्ष और वनरोपण अभियान में जितने पौधे लगाए जाते हैं उससे अधिक जंगल हर साल कट जाते हैं।

पश्चिम यूरोप के बराबर भूभाग में फैले भारत में पारिस्थितिक विभिन्नताएं बहुत हैं : ऊंची नीची पर्वत श्रेणियां है, गर्म और ठंडे पठार हैं, नदियों के मैदान हैं और डेल्टा प्रदेश हैं। भूरचना ही नहीं, जलवायु की दृष्टि से भी बीसियों वर्ग हैं। इन सबमें जैव उत्पादन बढ़ाने का कोई एक फार्मूला नहीं हो सकता। स्थानीय पारिस्थितिकी के अनुरूप, लोगों के सामाजिक गठन और आवश्यकताओं की दृष्टि से योजना बनानी होगी। स्थानीय रूप से उत्पादकता केवल प्राकृतिक नियमों का पालन करके ही बढ़ाई जा सकती है।

असल सवाल यह है कि यह काम कैसे किया जाए? यहां दो-तीन बातों को समझ कर ही कारगर रणनीति बनाई जा सकती है। पहली बात यह है कि लोगों के मन में बैठ गया है कि चतुर्दिक विकास की जिम्मेदारी सरकार की है। इसलिए जब वह कुछ करेगी तभी कुछ होगा। इस भावना की जगह स्वावलंबन और सामुदायिक सहयोग का माद्दा जगाना होगा। यह काम स्वैच्छिक संगठनों और सामाजिक चेतना संपन्न व्यक्तियों का है जो कारगर ग्राम संगठन बना सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि गांवों में वह सामुदायिक समरसता और सहयोग की भावना घट गई है जो उन्हें एकसूत्र में पिरोती थी। कारण बहुत से हैं किंतु सामुदायिक आधार पर बनी रणनीति में जब छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सब की साझेदारी होगी, योजना के आर्थिक लाभ सबको मिलने का भरोसा होगा तो समरसता, परस्पर निर्भरता की भावना मजबूत होती जाएगी।

तीसरे, सभी सरकारी गतिविधियों को समन्वित करना होगा और कानूनों में इतना परिवर्तन या लचीलापन लाना होगा कि वे सामुदायिक प्रयास में बाधक नहीं वरन् सहायक बनें।

अब आइए ग्राम विकास और जैव उत्पादन बढ़ाने के उन प्रयासों पर निगाह डालें जो समय-समय पर चर्चा के विषय बने हैं और दूसरों के लिए आदर्श के रूप में रखे जाते हैं। ऊपर चर्चित तीन बातों की सार्थकता स्पष्ट हो जाएगी और यह दावा भी कि कम खर्च में ज्यादा लाभकारी काम कैसे किया जा सकता है।

चिपको आंदोलन : ठेकदारों द्वारा जंगल की कटाई के विरुद्ध उभरे आंदोलन का श्रेय गोपेश्वर स्थित दशौली ग्राम स्वराज्य मंडल को है। इस संगठन ने सामुदायिक वनरोपण अभियान भी चलाया और दशौली प्रखंड (जिला चमोली) के गांवों में महिला मंगल दल गठित किए हैं। गांव के हर परिवार की एक महिला दल की सदस्य होती है। दल आसपास की सामुदायिक भूमि का नियंत्रण करता है। घास और चारे की पैदावार बढ़ी है, जिसका समुचित वितरण किया जाता है। सामुदायिक भूमि के उपयोग के नियम हैं, जिसका पालन सभी करते हैं। दल अब पीने के पानी के प्रबंध, स्कूल और स्वास्थ्य सेवा आदि की व्यवस्था में दिलचस्पी लेने लगा है। औरतों की ये पंचायतें सामुदायिक जीवन और पारिस्थितिकी की संरक्षक बन गई हैं। उनके सामने समस्याएं आती रहती हैं, लेकिन जो वे हासिल कर सकी हैं वह अनुकरणीय मिसाल है।

सुखोमाजरी गांव : चंडीगढ़ के पास सुखोमाजरी गांव के आसपास के जंगल कट चुके थे। घास और चारे का अभाव और गांव में गरीबी बढ़ रही थी। लगभग दस वर्ष पहले 'पर्वतीय साधन प्रबंध समिति' नामक संगठन यहां बना, जिसने बरसात का पानी रोकने के लिए मिट्टी का बांध बनाया। फिर तालाब के जल संचय क्षेत्र में पेड़ भी लगाए गए और उनकी हिफाजत की। तालाब के कारण पैदावार तीन गुनी हो गई। गांव वालों ने वन विभाग के पीछे पड़कर वनभूमि में घास उगाने का अधिकार प्राप्त करके घास उगानी शुरू कर दी। अब घास भी अधिक पैदा होती है जिसकी बिक्री की आय से वन विभाग को रायल्टी दी जाती है और शेष राशि जल संचय क्षेत्र के विकास के लिए खर्च की जाती है। बकरियों की जगह भैंसें आ गई हैं। तीन लाख रुपये का दूध ही बिक जाता है। लोगों की आमदनी तीन-चार गुना बढ़ गई है। गांववासियों की मेहनत रंग न लाती अगर वन विभाग का सहयोग न मिलता।

पुणे के 'ग्राम गौरव प्रतिष्ठापन' ने ग्रामस्तर पर पानी पंचायतों का गठन किया है। उनका उद्देश्य है पानी जैसे दुर्लभ साधन के समानांतर वितरण की व्यवस्था करना। ये पंचायतें गांव के सीमांत किसानों, भूमिहान मजदूरों और हरिजनों को संगठित करके एकजुट करती हैं। एक बार पानी उपलब्ध हो जाने पर पानी पंचायतें उसके वितरण, उपयोग और फसल चक्र पर भी नियंत्रण रखती हैं। सभी पानी पंचायतों ने फैसला किया है कि सदस्य ज्यादा पानी मांगने वाली फसलें जैसे गन्ना नहीं उगाएंगे ताकि अधिक से अधिक सदस्यों और भूमि को सीमित जल संसाधन का लाभ मिल सके।

इस तरह के अनेक गैर सरकारी संगठन हैं जिनकों पर्याप्त सफलता मिली है। सरकार भी अनेक योजनाएं चलवा रही है। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय पनढाल प्रबंध मंडल जो लगभग सौ जिलों में जल संचय क्षेत्रों का विकास कर रहा है। नेशनल वेस्टलैंड डेवलपमेंट बोर्ड (सरकारी सहायता प्राप्त संगठन) बंजर भूमि को पुनः उर्वर बनाने के लिए गठित किया गया था। किंतु कुछ ही वर्षों बाद उसे लगा कि भूमि के नवीकरण का लक्ष्य काफी नहीं है। इसकी जगह समन्वित विकास कार्यक्रम चलाना चाहिए क्योंकि भूमि के उपयोग, जल संग्रह, वृक्षारोपण, चारे की उपलब्धि आदि गतिविधियों को अलग नहीं किया जा सकता – एक के बिना दूसरा काम सम्भव नहीं है।

सरकार के विभिन्न विभाग आपस में तालमेल नहीं रखते। राजस्व, वन, स्वास्थ्य, सिंचाई, कृषि विस्तार आदि विभागों से सम्बद्ध कर्मचारी अपना-अपना राग अलापते हैं। इनमें से कोई ग्राम संगठन से सहयोग करता है तो कोई नहीं, क्योंकि वे अपने उच्च अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी हैं, ग्रामवासियों के प्रति नहीं। सरकारी होने के नाते वे अपने को श्रेष्ठ समझते हैं।

ऊर्जा और खासकर जैव पदार्थों से मिलने वाली ऊर्जा की चर्चा हमें सिंचाई, भूमि के उपयोग, पशुओं के चारे, स्वैच्छिक संगठन, ग्राम स्तर के संगठन, सरकारी कर्मचारियों के सहयोग और समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम की आवश्यकता तक खींच लाई। दरअसल ये सारी चीजें एक दूसरे से संबंधित ही नहीं, परस्पर आत्म निर्भर हैं।

इन सब प्रयासों को सरकारी तंत्र का ही नहीं वैज्ञानिक शोध और गांवों में चल और खप सकने वाली टेक्नालोजी का भी सहयोग मिलना चाहिए। जैव पदार्थों की उत्पादकता बढ़ाना और उसे प्राथमिकता देना पुरातनपंथ नहीं है - हालात का तकाजा है, क्योंकि इसी के द्वारा गांव खुशहाल हो सकते हैं। गांव खुशहाल होंगे तो शहर भी तरक्की करेंगे। मजबूत आधार पर ही भौतिक

उन्नति का महल खड़ा किया जा सकता हैं। जरूरी नहीं कि सबकी रसोई कुकिंग गैस पर ही पके, लेकिन यह जरूरी है कि रसोईघर में प्रचुर खाद्य पदार्थ हों और पकाने के लिए पर्याप्त ईंधन।

तार्किक दृष्टि से देखें तो कोयला और खनिज तेल का मूल स्रोत पेड़-पौधे ही हैं जो लाखों करोड़ों वर्ष पहले भू-संरचना की उथल-पुथल के दौर में भूमि के गर्भ में पहुंच गए। गर्मी और दबाव ने उनको कहीं कोयले का तो कहीं खनिज तेल का रूप दे दिया। इनका दर्जा संचित निधि का है। इनके भंडार सीमित हैं। पेड़-पौधे उगाकर हम उनका जलावन तथा दूसरे रूपों में इस्तेमाल करते रह सकते हैं। यह चालू खाता है जिसे बढ़ाया जा सकता है। ऊर्जा के भूमिस्थ भंडार पुश्तैनी पूंजी हैं जिसका क्षय होना ही है।

बी-9, प्रेस एन्कलेव,
साकेत, नई दिल्ली-110017

वयं रक्षामः

✍ **संजय कुमार मिश्र**

मैं जड़ हूं,
परन्तु
चेतना हूं सारे संसार की
आदि से अन्त तक
मेरा सर्वस्व समर्पित है,
मानवता के लिए।

मैं आश्रय हूं
नभचर और वन्य जीवों का,
मैं श्रृंगार हूं
धरती का।

मेरा अस्तित्व जरूरी है,
क्योंकि मैं शिव हूं।
मैं सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का
साकार रूप,
शीत वर्षा और धूप में
फैलाता हूं अपनी बाहें
मैं सहकार और परमार्थ हूं।

औद्योगिक प्रदूषण का हालाहल पीकर
देता हूं प्राण वायु तुमको
मैं प्राण हूं, निदान हूं समस्या का
रोटी कपड़ा और मकान की।

मैं सजीव विकास हूं निरीह नहीं हूं।
मैं त्राण नहीं चाहता/बल्कि याद दिलाता हूं तुम्हें
कि जीव मात्र के हितार्थ
मुझे भी जीने दो।

मैं देता हूं तुम्हें फूल और फल
ताकि रह सको तुम स्वस्थ
और सबल
मैं मरकर जलाता हूं
तुम्हारा चूल्हा
ताकि मिल सके भूखे पेट को
दो जून की रोटी।

तुम नहीं जानते
मैं हूं कौन?
मैं हरा भरा
एक वृक्ष हूं
मेरा उद्घोष है
वयं रक्षामः

शेखपुर समोधा, रायबरेली

कहानी

संभावनाओं की तलाश

✍ डा० विमला उपाध्याय

कल आठ बजे दिन में ही सुजाता आ गई। आकर ढेर सारी बातें सुनाने लगी। अपनी प्रधानाध्यापिका का स्वभाव। उसका शौक। कड़ा अनुशासन। सुजाता के प्रत्येक शब्द से उसका आत्मविश्वास टपकता था। लगता था कि उसने जीवन को निकट से जानने की ईमानदार कोशिश की है। कुछ देर अपनी बातें सुनाकर वह कह उठी "आपको मैं क्या बताऊंगी दीदी! आप सारी बातें जानती ही हैं। आप तो मेरे जन्म से ही मेरे संघर्षों की प्रेरिका और साक्षी रही हैं।"

यह कहकर उसकी आंखें पनीली हो गईं। मुखमंडल पर आर्द्रता छा गई। लगा वह जरूरत से ज्यादा भावुक हो गई है। मैंने उसे दुलारते हुए कहाः

"सुजाता, न कोई प्रेरणा देता है, न साक्षी होता है किसी संघर्ष का। मनुष्य के भीतर, अनंत क्षमता छिपी है। उसे जगा भर देने की जरूरत है. . . . तुम व्यर्थ ही भावुक होती हो। तुमने जो कुछ पाया है, अपनी लगन, श्रम और पुरुषार्थ से पाया है। और भी तुम्हें बहुत कुछ पाना है सुजाता।"

यह सुनकर क्षणभर को वह स्थिर हो गई। अपलक मेरी ओर देखती रही और फिर प्रणाम कर लौट गई। मैं उसे जाते देखती रही। उसका पदचाप सुनती रही और पता नहीं यादों का कैसा झोंका आया कि अतीत के गली-गलियारे में भटकने लगी।

उत्तर प्रदेश का एक गांव। जिला मुख्यालय से पचास मील दूर। तीस साल पहले का एक दिन। मैं अपने गांव में ही थी। गर्मी की छुट्टियां बिताने गई थी। उस वर्ष आम खूब आया था। डालियां फल के भार से जमीन से सट गई थीं। यही शाम का समय रहा होगा। मैंने अनुमान किया कि मेरे घर से चौथे घर में बड़ी व्यस्तता है। आवा जाही जारी है। घर के सदस्यों के चेहरे उदास हैं। खोए हुए। किसी भावी आंशका से त्रस्त।

मैं जानती थी कि मेरी मां मुझसे बहुत सारी बातें छिपा जाती है कि मेरे कोमल मन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। ग्रामीण जीवन की नग्नता कहीं मुझे आहत न करे। परंतु गांव में जन्मी पली हूं। उसके दुःख दर्द न जानूं तो अपने समाज से बेईमानी होगी। मेरी चाची मेरी हमराज़ है। वे कुछ नहीं छिपाती है। वे मुझे एकांत में ले जाकर बताने लगी कि—"असल बात यह है कि हरखू की बहू बच्चा जनने वाली है। अब तक उसकी चार लड़कियां हो चुकी हैं। अब तब में फिर सन्तान होगी। मगर फिर कन्या हुई तो कुहराम मच जाएगा।"

"चाची, होनी को कौन टाल सकता है? लड़का हो या लड़की कोख जाई संतान तो आखिर संतान ही है न! उसके प्रति ममत्व, वात्सल्य में भी भेद हो सकता है क्या?"

"तुम नहीं समझोगी विमला! कन्या का जन्म यहां अशुभ समझा जाता है। उसे पाल-पोस कर बड़ा करो। फिर जमीन-जायदाद बेचकर दहेज जुटाओ। बेटी मां-बाप को दरिद्र बनाकर पराई हो जाती है।"

इतना सुनकर मेरा सारा आपा झन्ना उठा। मुझे इस समाज और उसकी व्यवस्था पर आक्रोश हुआ। मेरी नसें फड़कने लगीं। मैंने बहुत संयम बटोरकर कहा—"चाची, सब औरतें तो लड़कियां ही होती हैं। हरखू की मां कभी किसी की लड़की रही होगी। हरखू की बहू भी किसी की लड़की है जिससे वह पुत्ररत्न की आशा किए बैठी है।"

"यही बात भर नहीं है बिटिया! लड़कियां इसलिए अभिशाप हैं कि वे परावलंबी हैं। उन्हें उपेक्षित समझा जाता है। पढ़ाया-लिखाया नहीं जाता।"

यह सुनकर मेरा मन खट्टा हुआ। मैंने न आव देखा न ताव। सीधे हरखू के घर दौड़ पड़ी।

हरखू मेरा अग्रज लगता था। मैंने उन्हें प्रणाम किया। चाचा का चरण स्पर्श किया। मेरे पहुंचते ही वहां का वातावरण कुछ-कुछ सहज होने लगा। इसी बीच किसी की चीत्कार ने मन भारी कर

दिया। हरखू की मां उधर से गुजरीं तो मेरा चटपट हालचाल पूछकर मन-ही-मन कुछ-कुछ बुदबुदाने लगीं। मैंने साफ-साफ पूछा—"क्या जप रही हो चाची।"

"तुम भी जपो बिटिया। जय मां काली, जय मां शीतला, जय दुर्गा मैया, बटबाबा आप ही तारने वाले हो, एक लाल दे दो मैया। दोहरा पाड़ा चढ़ाऊंगी (दो बकरों का एक साथ बलिदान करना)"... .मैंने बीच में ही उन्हें रोक दिया।

"कोई मैया न लड़की को लड़का बना सकती है, न लड़के को लड़की. . . ..सब व्यर्थ है।"

"ऐसा न कहो, गुरु गोसाईं पर उंगली उठाना ठीक नहीं होता है। तुरंत फल मिलता है।"

मेरी बातचीत चल ही रही थी कि किसी ने आकर सूचना दी—"लड़की हुई है।" फिर क्या था। चाची का धनुष पतोहु की ओर तन गया और तीरों की वर्षा होने लगी।

"मैंने पहले कहा था कि कुलच्छनी है बहू! रंग ढंग से ही पता चलता है। इससे बेहतर था बांझ रहती। निगोड़ी कहीं की। कुल बैरन। हरखू को पानी देने वाला नहीं हुआ. . . .. .।"

चाची इतना नीचे गिर सकती है, इतनी रूढ़िवादी और पिछड़ी है—यह मैं सोच भी नहीं सकती थी। मुझे लग रहा था कि चाची अपनी नवजात पोती को नहीं कोस रही है, सारी नारी जाति पर कीचड़ उछाल रही है। मैं सोचने लगी कि कहां गया वह आदर्श कि जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवतागण वास करते हैं। मुझे भय हुआ कि कहीं जीवन का पहला प्रभात देखते ही वह बच्ची मौत के घाट न उतार दी जाए। कौन जाने कोई गुस्से में गला दबा दे। नमक चटाकर बच्ची को मारने की कहानी मैं सुन चुकी थी। मैं झपटकर प्रसव गृह में घुस गई।

वहां का हाल देखकर मन भिन्ना गया। हवा का कहीं प्रवेश नहीं, उल्टे धुएं से घर भरा था। मैंने बच्ची को जी भर निहारा। निहारती ही रही। फिर चाची तथा अन्य कन्याविरोधिनी महिलाओं की ओर एक्सरे दृष्टि डाली। सबके चेहरे लटके थे।

मैंने बच्ची की ओर देखकर बोलना शुरू किया— "कैसा हृदय है आप लोगों का! लगता है आप मां नहीं हैं। आपमें ममता लेशमात्र भी नहीं है। कितनी प्यारी बच्ची है। आप उसे अभिशाप और अपशकुन कहती हैं। धिक्कार है आपके मातृत्व को।"

एक महिला बीच में बोल पड़ी, शायद मेरा तेज न सह पाई—"आप पाल पोसकर विवाह कराएंगी इस बच्ची का? बोलिए दम है इतना?"

मैंने तपाक से कहा—"मैं इस गांव को, समाज को, इस खानदान को बता देना चाहती हूं कि कन्या किसी तरह भी पुत्र से कम नहीं है बशर्ते उसका विधिवत लालन-पालन किया जाए।"

चार वर्ष अपने चाचा के कठोर नियंत्रण में रखकर सुजाता को मैं अपने घर ले आई। अब वह बी.एससी.बी.एड. है। उसका व्यक्तित्व स्वर्ण की तरह दमकता गया। मैं उसमें अच्छे संस्कार भरती गई और उसे प्रेरित करती रही कि तुम किसी लड़के से कम नहीं हो।

लड़कियां ऐसी ही सृजनशील और कल्पनाशील होती हैं। उन्हें उचित दिशा-निर्देश और प्रशिक्षण मिले तो उसका सर्वतोमुखी विकास होना स्वाभाविक है।

सुजाता सरकार स्कूल में विज्ञान की शिक्षिका हो गई है। उसके रूप-सौंदर्य, संस्कार और शिक्षा पर रीझकर एक युवा सरकारी अधिकारी ने उससे आदर्श विवाह किया है। उसकी अपनी गृहस्थी है। अपना रचाया संसार। कभी-कभी वह मुझसे मिल लेती है।

इस साल दुर्गा पूजा में मैं अपने गांव गई तो अनेक महिलाओं ने मुझे घेर लिया। पहले सुजाता का समाचार पूछा, फिर मुझे शाबाशी दी—"तुमने हमारी आंखें खोल दीं। हम लोग कितने भ्रम में थे। कितना पिछड़ा है हमारा समाज। तुमने सिखा दिया कि हम लोग लड़कियों को लड़कों की तरह स्वावलंबी बना सकते हैं।" हरखू की बहू (जो मेरी भाभी लगती है) ने आकर मुझे आलिंगन में जकड़ लिया और फूट-फूटकर रोने लगी। मैं सुजाता को याद करती रही।

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
अर्थशास्त्र विभाग,
एस.एस.एल.एन.टी.महिला
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
धनबाद-826001 (बिहार)

ग्रामीण विकास में अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का योगदान

डा. (कु.) पुष्पा अग्रवाल

प्रकृति को उसकी विविधता में सुरक्षित रखने की संकल्पना भारत में बहुत पुरानी है। नदियों के जल को पवित्र मानना, वट-पीपल, तुलसी आदि पेड़-पौधों की पूजा करना, पर्वतों और वन प्रांतों में देवी-देवताओं के आवास की कल्पना करना, वेदों में प्रकृति के रूपों को देव रूप में मान्यता देना आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनके पीछे प्रकृति के संरक्षण की भावना छिपी है। उस समय मानव प्रकृति से जुड़ा था और प्रकृति भी उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम थी। वह स्वयं कल्पा थी। अपना उपचार करने में स्वयं सक्षम थी। उसके भण्डार भरे थे।

किन्तु आज मानव की 'और अधिक की' उत्कट लालसा के कारण प्रकृति की शक्ति चूकती जा रही है। उसके भण्डार प्रतिक्षण रिक्त हो रहे हैं। वह परमुखापेक्षी हो चुकी है। इधर अर्थ व्यवस्था के हर क्षेत्र में ऊर्जा की आवश्यकता है वरन् यह कहना चाहिए कि विकास ऊर्जा का ही पर्याय है। अतः यह आवश्यक है कि अभी से सजग होकर बचत करनी प्रारम्भ कर दी जाए और ऐसे स्रोतों की ओर उन्मुख हुआ जाए जो अक्षय हों। ऊर्जा के पारम्परिक स्रोतों में कोयला, लकड़ी, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस आदि आते हैं। ऊर्जा के अक्षय स्रोतों में सूर्य, पवन, बहता हुआ जल, सागर की लहरें, ज्वार भाटा, भूतापीय ऊर्जा, प्राणी जगत द्वारा विसर्जित मल-मूत्र, कचरा, एक सीमा तक वनस्पति जगत और परमाणु शक्ति का समावेश होता है।

आधुनिक युग में जल विद्युत ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि देश में कोयले और तेल के भण्डार सीमित हैं जबकि जल सम्पदा का भण्डार अपार है। गंगा और यमुना नदी घाटियों में ही लगभग 11,000 मेगावाट विद्युत उत्पादन क्षमता है। कोयले और खनिज तेल के अभाव में जल विद्युत का बहुत अधिक महत्व है। जल शक्ति से लगभग 47.214 करोड़ यूनिट बिजली प्रतिवर्ष उत्पन्न की जा सकती है। अब तक केवल 4867 यूनिट विद्युत ही पैदा की जाती है। शिव समुद्रम, भाखड़ा नांगल, दामोदर घाटी, हीराकुण्ड, कोसी, रिहन्द और चम्बल घाटी परियोजनाएं, विद्युत उत्पादन के प्रमुख केन्द्र हैं। इनके इस उत्पाद के कारण भारत के अनेक कल कारखाने, फैक्टरियां तो गतिशील हैं ही, शहर और गांवों तक प्रकाश भी ले जाया गया है। इस समय हमारे देश में विद्युत की खपत 157 यूनिट प्रति व्यक्ति है जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में 10,638 यूनिट, पश्चिमी जर्मनी में 5,851 यूनिट और कनाडा में 7,907 यूनिट प्रति व्यक्ति है।

जल स्रोत में इन नदी परियोजनाओं के अतिरिक्त आज मानव ने समुद्री लहरों और समुद्री हवाओं का भी ऊर्जा उत्पादन के लिए प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। औद्योगिक रूप से चरम विकसित जापान में समुद्र की सतही लहरों के सतत ज्वारभाटीय व्यवहार में निहित गतिशील शक्ति को बिजली में बदला जा रहा है। भारत में भी महासागर की शक्ति-पुंज लहरों से बिजली बना पाने के बहुत से प्रयास चल रहे हैं।

अरब महासागर में भी उसकी ऊपरी सतह के अपेक्षाकृत गर्म पानी और सागर के गहरे गर्भ में ठण्डे जल के तापान्तर कालम उठा कर उर्वरक के आधार अमोनिया और बिजली के एक साथ उत्पादन की सम्भावना जन्म ले चुकी है। यदि महासागर में जन्मी 700 किलोमीटर प्रतिघण्टे से भी अधिक वेगवान त्सुनामी लहरों का प्रयोग बिजली सृजन के लिए किया जा सके तो संसार से अन्धकार की काली चादर एक साथ हटाई जा सकेगी। विश्व का कोई गांव, कोई स्थान प्रकाश से वंचित नहीं रहेगा।

भारत में प्राचीन काल से पवन ऊर्जा का प्रयोग पवन चक्कियों के रूप में किया जा रहा है। वैदिक साहित्य में 49 प्रकार की पवन का वर्णन आया है। उसके प्रमुख रूप मन्द सुगन्धित समीर, आंधी, तूफान, चक्रवात की शक्ति से मानव भली प्रकार परिचित है। आज मानव ने उससे बिजली का सृजन किया है। भारत में पवन ऊर्जा से 20,000 मेगावाट बिजली का सृजन हो सकता है। विश्व बैंक और अमरीका द्वारा किए गए अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भारत उन 29 विकासशील देशों में से एक है जहां पवन विद्युत की पर्याप्त सम्भावनाएं हैं। अभी तक देश में 2000 से भी अधिक पवन पम्प चलाए जा चुके हैं जिनसे खेती और पीने के लिए पानी प्राप्त होता है। महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु और उड़ीसा के कुछ गांवों में छः मेगावाट वाली छः पवन फार्म योजनाएं कार्यरत हैं। वर्ष 1986-87 में जहां 1.43 मेगावाट के 365 पवन पम्प लगाए गए थे वहां 1991-92 में 7.80 मेगावाट के 725 पवन पम्प लगाए गए हैं। इन परियोजनाओं के अन्तर्गत पचास से अधिक गांव लाए जा चुके हैं और आशा है कि आने वाले कुछ वर्षों में 5000 से अधिक गांवों में यह परियोजना लागू हो जायेगी।

अमरीका में 1970 से टायरों से बिजली बनाने वाले संयंत्र काम रहे हैं। अब इनकी संख्या 125 हो गई है। ब्रिटेन में भी पुराने टायरों को जलाकर बिजली पैदा करने का एक संयंत्र स्थापित किया जा रहा है। 20 मेगावाट का यह संयंत्र 20,000 घरों को बिजली की आपूर्ति करेगा। इस संयंत्र पर 3.6 करोड़ पौंड की लागत आने का अनुमान है। इस प्रकार यह ब्रिटेन में बेकार हुए टायरों के 45 प्रतिशत भाग को प्रतिवर्ष ठिकाने लगाने का महत्वपूर्ण कार्य करेगा। भारत में अभी इस ओर कोई प्रयोग नहीं हुए हैं। यदि भारत में भी पुराने टायरों को जलाकर विद्युत तैयार कर ली जाए तो जहां एक ओर ऊर्जा स्रोत का एक और विकल्प मिल सकेगा वहां दूसरी ओर इनके अम्बार से उत्पन्न गैसों से दूषित होते पर्यावरण को भी सुरक्षित किया जा सकेगा।

अपरम्परागत ऊर्जा स्रोतों में भूमिगत ऊर्जा का भी समावेश है। भूमिगत ऊर्जा के संग्रहण में अमरीका के एक वैज्ञानिक को उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है। इस तकनीक द्वारा ग्रीष्मकालीन ऊर्जा को संग्रहित करके सर्दियों में प्रयुक्त किया जा सकता है। इसराइल में इस तकनीक पर सफल प्रयोग किए गए हैं। फिर भी अभी इस क्षेत्र में और परीक्षणों की आवश्यकता है।

बायोगैस

बायोगैस एक स्वच्छ ज्वलनशील गैस है जिससे 55 से 70 प्रतिशत मिथेन गैस होती है। यह विभिन्न जैव सामग्रियों जैसे - पशुओं के गोबर, मानवीय अपशिष्ट तथा बायोमास के अपघटन से प्राप्त होती है। इन जैव सामग्रियों का विघटन, विशेष तकनीक पर विकसित किए गए बायोगैस संयंत्र में होता है। इससे गोबर की खाद-शक्ति नष्ट होने की बजाए और बढ़ जाती है। इस संयंत्र से न केवल इसमें डाले गए गोबर की मात्रा की बराबर मात्रा में उच्च कोटि का उपजाऊ कार्बनिक उर्वरक प्राप्त होता है, बल्कि स्वच्छ तथा धुआंरहित गैसीय ईंधन भी प्राप्त होता है।

भारत में बनावट तथा आकार के आधार पर अनेक किस्म के बायोगैस संयंत्र विकसित किए गए हैं। पारिवारिक संयंत्र का उपयोग मुख्य रूप से खाना पकाने के लिए ईंधन (गैसीय) तथा रोशनी प्राप्त करने के लिए होता है। अब बड़े आकार के सामुदायिक अथवा संस्थागत संयंत्र बड़ी संख्या में स्थापित किए जाने लगे हैं, जिनका उपयोग सिंचाई, खेती के काम में आने वाली मशीनों को चलाने तथा बिजली के उत्पादन में भी होता है। बायोगैस संयंत्र की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है।

गांव में रहने वाले परिवार को पारिवारिक अथवा सामुदायिक बायोगैस संयंत्र का निर्माण कराकर आसानी से बायोगैस उपलब्ध करायी जा सकती है। यदि इस समय उपलब्ध गोबर के 66 प्रतिशत का प्रयोग बायोगैस उत्पादन करने में कर लिया जाए तो उससे 20 करोड़ टन जैविक खाद मिल सकती है जिससे 1.40 करोड़ टन नाइट्रोजन, 1.5 करोड़ टन फास्फेट एवं 0.9 करोड़ टन पोटाश की बचत की जा सकती है। साथ ही इससे 22.425 करोड़ घ. मी. गैस पैदा की जा सकती है जिससे 140 लाख किलोलीटर मिट्टी के तेल की बचत हो सकती है। यह गैस ईंधन, रोशनी, सिंचाई व लघु उद्योगों के काम लाई जा सकती है।

सन् 1980 की गणना के अनुसार यदि देश के कुल गोबर का गोबर गैस के लिए इस्तेमाल किया जाए तो इससे 4000 करोड़ क्यूबिक मीटर गोबर गैस का उत्पादन किया जा सकता है। इस संयंत्र की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि गोबर से गैस बना लेने के बाद भी गोबर में जो उर्वरक शक्ति होती है वह कम नहीं होती। अतः गोबर गैस बना लेने के बाद हमारे पास प्रतिवर्ष 50 लाख मी. टन खाद उपलब्ध होगी जोकि हमारे देश में इस्तेमाल की जा रही रासायनिक खाद की मात्रा से कहीं अधिक है।

बायो गैस संयंत्रों की निम्नलिखित किस्में प्रचलन में हैं :

1. जनता बायोगैस प्लांट।
2. खादी ग्रामोद्योग आयोग बायोगैस प्लांट
3. गणेश बायोगैस प्लांट
4. सामुदायिक बायोगैस प्लांट

इन्हीं प्लांटों से गलियों में प्रकाश का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। इसी प्रकार का एक प्लांट करनाल में गोरपुर खालसा गांव में शुरू किया गया है।

भारत सरकार ने बायोगैस विकास के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत सभी स्तरों पर प्रशिक्षण देने का निर्णय लिया है ताकि इनके असफल होने के किसी भी आसार को समाप्त किया जा सके। पाठ्यक्रम राज्य स्तर पर होते हैं जिनकी अवधि 15-20 दिन है। इनका उद्देश्य प्लांटों के काम न करने के कारणों का पता लगाना और उन्हें ठीक करके नई बातों के बारे में राज मिस्त्रियों को जानकारी देना है। चूंकि महिलाएं बायोगैस की सबसे महत्वपूर्ण लाभार्थी हैं इसलिए बायोगैस के प्रभावशाली प्रयोग, बर्नरों की सफाई और मरम्मत आदि के बारे में महिलाओं को ही जानकारी दी जाए ताकि वे छोटी मोटी खराबियों के लिए मैकेनिक का इंतजार न करें। कुछ महिलाओं को इस क्षेत्र में पहले ही प्रशिक्षण दिया जा चुका है।

जो लाभार्थी बायोगैस प्लांट लगाना चाहते हैं उन्हें इसके निर्माण के लिए सहायता दी जाती है। पहले की तुलना में अब इस प्लांट के लिए दी जाने वाली सहायता को बढ़ा दिया गया है। भारत सरकार सभी छोटे तथा बड़े किसानों को बायोगैस प्लांट लगाने के लिए सहायता दे रही है।

राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना के अन्तर्गत बायोगैस प्लांट लगाये गए। इनके लिए प्रशिक्षित राज मिस्त्री और प्लांटों में आने वाली खराबी को दूर करने के लिए फिटर और मिस्त्री रखे गए जो इन्हें निशुल्क ठीक करते हैं। ग्रामीण लोगों में बायोगैस के प्लांट लगाने में लोगों की हिचक को दूर करने और इससे होने वाले लाभों को बताने आदि के बारे में प्रचार किया जा रहा है। घरेलू महिलाओं ने परम्परागत चूल्हों और अंगीठियों की तुलना में इन प्लांटों को बहुत लाभप्रद पाया है।

सुधरे चूल्हे का राष्ट्रीय कार्यक्रम अप्रैल 1985 में शुरू किया गया। यह कार्यक्रम गांवों में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। गांव की महिलाओं, खासकर गरीब घरों की महिलाओं के लिए सुधरा चूल्हा वरदान साबित हो रहा है। इस चूल्हे को बनाने में न ज्यादा मेहनत है न खर्च। लेकिन इस चूल्हे के फायदे अनेक हैं।

परम्परागत चूल्हों में आग का बहुत बड़ा हिस्सा बर्बाद हो जाता है। कुछ गर्मी को चूल्हे की दीवारें सोंख लेती थीं तथा कुछ गर्मी चूल्हे से बाहर निकलकर हवा में फैल जाती थी। साथ ही पुराने चूल्हे से निकलने वाली जहरीली गैस आसपास के पर्यावरण तथा खाना पकाने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य को हानि पहुंचाती है।

यह पाया गया कि समुचित ढंग से इस्तेमाल किये जाने पर एक सुधरा चूल्हा प्रति वर्ष 1000 किलोग्राम लकड़ी की बचत करता है। यही कारण है कि गांवों में सुधरे चूल्हे के प्रति काफी उत्साह है। इसमें ईंधन, तेल अथवा गैस की बदबू नहीं होती और यह वातावारण को भी साफ रखता है तथा प्रदूषण को रोकता है। सबसे महत्वपूर्ण और लाभकारी बात यह है कि इससे देश के मूल्यवान ऊर्जा साधनों की बचत होती है।

सौर ऊर्जा

सूर्य ऊर्जा का सबसे बड़ा और सुलभ भण्डार है। इसका दोहन विभिन्न प्रकार से किया जाता है। दोहन मुख्य रूप से निम्न संयंत्रों से किया जाता है :

सोलर कुकर एक बक्से के आकार का बहुत साधारण उपकरण होता है जिसके द्वारा सूर्य की गर्मी का उपयोग करके आसानी से खाना बनाया जा सकता है। सौर ऊर्जा से चालित टी. वी. सुदूर ग्रामीण अंचल में बहु उपयोगी हैं। जहां पर बिजली आसानी से उपलब्ध होती नहीं होती है वहां पर टी. वी. देखने का लाभ आसानी से सोलर टी. वी. से मिल सकता है।

पानी बिना किसी अन्य ईंधन प्रयोग के गरम किया जा सकता है। सौर जल ऊष्मक तैयार करने की दिशा में अनुसंधान कार्य राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, केन्द्रीय भवन अनुसंधान और अन्य संस्थानों द्वारा आज से कई वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ कर दिया गया था। विभिन्न संस्थानों द्वारा इसके विभिन्न तरह के माडल विकसित किए गए हैं। अब तो बाजारों में बिक्री के लिए सौर जल ऊष्मक उपलब्ध हैं किन्तु ऐसे सौर जल ऊष्मकों से कम मात्रा में जल गरम किया जा सकता है। सौर जल ऊष्मकों का प्रयोग घरेलू उपयोगों, अतिथि गृहों, भवनों, छात्रावासों और होटलों में सुगमतापूर्वक किया जा रहा है।

सौर पम्प का आविष्कार मुख्य रूप से कृषि को ध्यान में रखकर किया गया है। सेन्ट्रल इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जलापूर्ति हेतु बड़े सौर पैनल की सहायता से चालित जल पम्पों का विकास किया है। जिन दुर्गम क्षेत्रों में बिजली की लाइनें बिछाना दुष्कर होता है ऐसे क्षेत्रों में यह पम्प जलापूर्ति हेतु अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इन सौर पम्पों को 100 वाट पैनलों से चलाया जा सकेगा। एक पम्प सेट द्वारा प्रति घंटा 4000 लीटर जल प्राप्त किया जा सकता है। इस सौर पम्प में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि प्रातः 10 बजे से सांय 4 बजे तक जब यह पम्प न चलाना हो उतने समय तक सौर पैनल द्वारा उत्पन्न विद्युत लेड एसिड संचालक बैटरी में संचित की जाती है। इसलिए जिस समय धूप न हो, उस समय भी इस संचित विद्युत द्वारा पम्प को चलाया जा सकता है।

भारत में बहुत से ऐसे दुर्गम क्षेत्र हैं जहां बिजली पहुंचाना बहुत ही दुष्कर कार्य है। अतः ऐसे क्षेत्रों हेतु सौर ऊर्जा जैनरेटर के निर्माण हेतु अनुसंधान कार्य चल रहा है जिससे इन दुर्गम क्षेत्रों को भी बिजली प्राप्त हो सके। आई. आई. टी. मद्रास में जर्मनी के सहयोग से 10 किलोवाट क्षमता का एक सौर ऊर्जा जैनरेटर स्थापित किया गया है। पंजाब कृषि विश्वविद्यालय लुधियाना भी इसी तरह के छोटे जैनरेटर का निर्माण कर रहा है।

वाष्प अवशोषण नियम के आधार पर भारत में एक टन सघन प्रशीतन (रेफ्रीजरेशन) यूनिट का विकास भी किया जा चुका है। इस परियोजना के पहले चरण में 10 टन क्षमता का रेफ्रीजरेशन

यूनिट तैयार किया जा रहा है। सौर रेफ्रीजरेशन की तरह ही सौर कोल्ड स्टोरेज की परियोजना पर भी अनुसंधान कार्य चल रहा है ताकि बिजली न रहने पर भी आलू, प्याज, फलों आदि को सुरक्षित रखा जा सके।

सौर शुष्कक अनाज सुखाने के काम आता है। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों के लिए यह उपकरण विशेष उपयोगी सिद्ध हो रहा है। सौर शुष्कक का निर्माण नेशनल इण्डस्ट्रीज डेवलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड नई दिल्ली ने किया है। इसके साथ ही फोरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट आफ इंडिया, देहरादून ने लकड़ी को सुखाने हेतु सौर भट्टा, सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट आफ फिशरीज टेक्नोलाजी द्वारा 40 किलो क्षमता के सौर जल शुष्कक के औद्योगिक संयंत्र और स्टेट सीड फार्म लाधोवाल (लुधियाना) द्वारा 10 टन दिवस क्षमता वाले धान शुष्कक का निर्माण किया जा चुका है। सौर शुष्कक से अनाज के साथ-साथ मिर्च, मटर, तम्बाकू, नारियल की गिरी आदि को भी सुखाया जा रहा है।

बीजों को भंडारित करने से पूर्व उन्हें सुखाने हेतु तेल से चलने वाले शुष्ककों का विकास किया गया है ताकि पूरी तरह सुखाए विना ही गोदाम में भर लेने के कारण अनाज खराब होने की हानियों से बचा जा सके। सौर शुष्कक से यह खर्चा मात्र छह रुपये प्रति टन आता है तथा स्थान कम घेरता है। फसल कटाई के मौसम में सौर शुष्कक के कार्य करने की अवधि 85 से 90 प्रतिशत दिन तक हो सकती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि अपनी कार्यकुशलता में थोड़ी सी कमी करके यह बादलों से युक्त दिन में भी काम कर सकता है।

सौर ऊर्जा को सीधे विद्युत ऊर्जा में बदलने हेतु सस्ती सौर सेल प्रणाली विकसित करने की योजना पर अनुसंधान हो रहा है और इसमें सफलता भी मिली है। इसके अन्तर्गत सस्ते फोटोवोल्टेयिक सौर सेल और पैनल का माडल तैयार कर उसका परीक्षण किया गया है। परीक्षण में उपयोगी सिद्ध होने के बाद अब इसका प्रयोग भी होने लगा है।

उपर्युक्त वर्णित फोटोवोल्टेयिक सौर सैल यद्यपि उपयोगी सिद्ध हुए हैं किन्तु जो सौर सेल सबसे उपयोगी सिद्ध हुए हैं और जिनका उपयोग सबसे अधिक हो रहा है, वे हैं परम्परागत रिफ्यूजन पी-एन जंक्शन, सिलिकन सौर सेल।

सौर भभकों के माध्यम से सौर ऊर्जा का उपयोग कर खारे जल को नमक रहित करके पीने योग्य बनाने में वैज्ञानिकों ने सफलता प्राप्त कर ली है। खारे जल को स्वच्छ जल में बदलने हेतु आसवन की प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस प्रक्रिया से प्राप्त जल अच्छी गुणवत्ता वाला आसवित जल होता है जिसका उपयोग रासायनिक विश्लेषण कार्यों और बैटरी भरने के लिए किया जा सकता है। अपनी बनावट और विशेषता के कारण सौर भभके खारे जल से पीने हेतु स्वच्छ जल उत्पादित करने में विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इस तरह सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों और समुद्र के तटवर्ती क्षेत्रों में सौर भभकों की सहायता से स्वच्छ जल उपलब्ध कराया जा सकता है।

केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान, भावनगर द्वारा जामनगर के समीप नवीनार लाइट हाउस में 130 लीटर प्रतिदिन की क्षमता वाला और बड़ौदा के इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान में 80 लीटर प्रतिदिन की क्षमता वाला सौर भभका स्थापित किया गया है, जिससे पीने योग्य जल और आसवित जल प्राप्त होता है। इसके साथ ही साथ विभिन्न क्षेत्रों में अनेक छोटे स्तर के सौर भभके भी स्थापित किए गए हैं जिनसे आसवित जल प्राप्त होता है।

सस्ते उपकरण जरूरी

भारत में सौर ऊर्जा पर आधारित उपर्युक्त संयंत्रों के विकास और निर्माण एवं उपयोग की सफलता से सिद्ध हो गया है कि भारत में सौर ऊर्जा का विस्तृत उपयोग सम्भव है। इस समय यद्यपि सौर ऊर्जा से संचालित संयंत्रों के विकास से भारत में खेती की सिंचाई, नहाने के लिए गर्म जल, रेडियो टार्च, टी. वी., टेपरिकार्डर आदि उपकरणों का संचालन, घरों को गर्म और ठंडा रखना, अनाज सुखाना, फलों और सब्जियों के संरक्षण हेतु शीतलन, भोजन पकाना, खारे जल को पीने योग्य स्वच्छ जल में बदलना आदि सम्भव हो गया है, किन्तु ये ऊर्जा संयंत्र महंगे हैं। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि सौर ऊर्जा से संचालित ऐसे उपकरणों का विकास और निर्माण किया जाये जो सस्ते हों, ताकि आम जनता भी उसका प्रयोग कर सके। भारत में सौर ऊर्जा की उपयोगिता को देखते हुए ऐसे सस्ते संयंत्रों के विकास और निर्माण हेतु अनुसंधान कार्य चल रहे हैं। आशा है कि भविष्य में शीघ्र ही ऐसे उपकरण विकसित कर लिये जाएंगे, जो सस्ते होंगे और आम जनता के लिए उपयोगी होंगे।

इसके अतिरिक्त हमें अपने प्रयोग में आने वाले बर्तनों में भी

(शेष पृष्ठ 19 पर)

पवन ऊर्जा के बढ़ते आयाम

धनंजय चोपड़ा

किसी देश को आर्थिक एवं सामाजिक विकास के पथ पर निरन्तर गतिशील बनाये रखने के लिए ऊर्जा की परम आवश्यकता होती है और यदि देश भारत के समान अपार जनसंख्या वाला हो तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि ऊर्जा की सतत् आपूर्ति बनी रहे। हमारे देश में ऊर्जा के अस्थायी प्राकृतिक जीवाश्म स्रोतों का उपयोग होता रहा है जिनमें कोयला, तेल, प्राकृतिक गैस तथा परमाणु शक्ति प्रमुख हैं। परन्तु अब जबकि वैज्ञानिकों ने यह चेतावनी दे दी है कि सन् 2010 तक इन स्रोतों का उत्पादन कम होने लगेगा और धीरे-धीरे ये स्रोत समाप्त हो जायेंगे तो भारत सरकार ऊर्जा के अन्य प्राकृतिक वैकल्पिक स्रोतों की ओर ध्यान दे रही है।

भारत एक जलवायु प्रधान देश है। यहां की प्राकृतिक विशिष्टता के कारण ही प्राकृतिक ऊर्जा स्रोत सरलता से उपलब्ध हैं जिनमें सूर्य, जल और पवन प्रमुख हैं। इनसे क्रमशः सौर ऊर्जा, जलशक्ति और पवन ऊर्जा प्राप्त की जा सकती हैं। इनमें सौर ऊर्जा और जल शक्ति को प्राप्त करने की कार्य प्रणाली अपेक्षाकृत जटिल तथा महंगी होती है जबकि पवन ऊर्जा को प्राप्त करने की प्रणाली कम लागत पर अधिक लाभ देने वाली है। इसीलिए भारत सरकार का अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय पवन ऊर्जा के क्षेत्र पर अधिक ध्यान दे रहा है।

पवन ऊर्जा स्रोत का उपयोग सर्वप्रथम चीन में तेरहवीं शताब्दी में ही प्रारम्भ हो गया था। पहले इसका उपयोग पाल-नौकाओं के संचालन में ही किया जाता था लेकिन आज पवन ऊर्जा का फैलाव एशिया, अफ्रीका और यूरोप के देशों तक हो गया है और इसका उपयोग कृषि और कई उद्योगों में हो रहा है। इस समय विश्व में पवन ऊर्जा की स्थापित क्षमता 28000 मेगावाट है जिसमें 1800 मेगावाट ऊर्जा का उत्पादन संयुक्त राज्य अमरीका में तथा 500 मेगावाट पवन ऊर्जा का उत्पादन डेनमार्क में होता है। ब्रिटेन, रूस, हालैण्ड और आयरलैण्ड आदि देशों में भी पवन ऊर्जा का विकास तेजी से हो रहा है। कई देशों में तो खपत से कई गुना अधिक पवन ऊर्जा का उत्पादन हो रहा है जो आने वाले समय के लिए एक सुखद संकेत है।

भारत में भी पवन ऊर्जा के विकास की बहुत अधिक संभावनाएं हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में पवन ऊर्जा की संभावित क्षमता 20,000 मेगावाट है। पवन ऊर्जा के क्षेत्र में सघन अनुसंधान हेतु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत सरकार प्रयासरत है लेकिन प्रथम संगठित अनुसंधान 1952 में आरम्भ हुआ और पवन ऊर्जा को प्राप्त करने की प्रणाली विकसित कर ली गई, लेकिन यह प्रणाली अपनी जटिलता के कारण अधिक उपयोगी सिद्ध न हो सकी। बाद में हालैण्ड की एक संस्था "टी. यू. एल. ई." (टूल) ने "आरगेनाइजेशन ऑफ दि रूरल पुअर" नामक एक भारतीय संस्थान के सहयोग से पवन चक्की का निर्माण कर एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित की। तब से पवन ऊर्जा के उत्पादन के क्षेत्र में निरन्तर प्रगति हो रही है।

अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय की नई रणनीति और कार्य योजना के तहत 250 किलोवाट क्षमता वाले पवन ऊर्जा ग्रिडों का निर्माण 1995 तक पूर्णरूपेण देशी तकनीक से होने लगेगा। देश के ऊर्जा-संकट की स्थिति को देखते हुए यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा रही है। इस समय देश की तीन महत्वपूर्ण कंपनियां इन ग्रिडों का निर्माण करती हैं। विकास और अनुसंधान के कई चरणों के बाद अब तक देशी तकनीक के मामले में लगभग 80 प्रतिशत सफलता ही प्राप्त हो सकी है जिसमें ब्लेड और विशिष्ट प्रकार के बियरिंग को अभी हम नहीं बना पा रहे हैं लेकिन रोटर ब्लैड का उत्पादन और उसके आकार प्रकार को देशी तकनीक से तैयार करने के लिए अनुसंधान कार्य और विकास कार्य चलाया जा रहा है ताकि इस क्षेत्र में हम पूर्णरूप से आत्मनिर्भर हो सकें। भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (भेल) ने इसका पहला नमूना कायाघर में लगाया है जो संतोषजनक ढंग से कार्य कर रहा है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान एयरोनाटिक्स लिमिटेड और कॉमप्रोक द्वारा चलाये जा रहे दो रोटर डेवलपमेंट प्रोजेक्टों पर भी कार्य चल रहा है और आशा है कि ब्लेडों के पहले सेट इसी वर्ष के अन्त तक परीक्षण के लिये तैयार हो जाएंगे।

अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय ने महत्वपूर्ण ऊर्जा-स्थलों का पता लगाने के लिए 23 राज्यों में व्यापक पवन ऊर्जा आकलन

निदेशक, समाज सेवा सदन, उत्तर प्रदेश

कार्यक्रम चलाया है। पवन ऊर्जा से बिजली पैदा करने के लिए गुजरात के कच्छ क्षेत्र में माण्डव में 1.15 मेगावाट, गुजरात के ही ओखा नामक स्थान पर 550 किलोवाट, तमिलनाडु के तूतीकोरिन के समुद्र तट पर 550 किलोवाट तथा उड़ीसा के पुरी में 550 किलोवाट के पवन ऊर्जा फार्मों की स्थापना बहुत पहले ही की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश के एक गांव अछैया में 853 एकड़ भूमि की सिंचाई पवन चक्कियों से होती है। आज भारत में पवन ऊर्जा के क्षेत्र में 114 मेगावाट क्षमता की परियोजनाएं चालू हो चुकी हैं। मंत्रालय ने अपनी ओर से आठवीं योजना के लिए निर्धारित बिजली उत्पादन का लक्ष्य 600 मेगावाट से बढ़ाकर 2000 मेगावाट कर दिया है। पवन ऊर्जा के फार्म स्थापित करने में निजी क्षेत्रों का भी सहयोग लिया जा रहा है। लगभग आधा दर्जन निजी कम्पनियां पवन ऊर्जा टर्बाइन बनाने हेतु सरकार से वार्ता कर रही हैं। मध्य प्रदेश में इस दिशा में एक समझौता अमल में लाकर पवन ऊर्जा क्रान्ति का सूत्रपात कर दिया गया है।

अपने देश की अपार जनसंख्या और विकास की दर के बीच तालमेल बिठाने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम स्वावलम्बी बनें। और यह तभी सम्भव है जब हम जीवाश्म ईंधनों के समाप्त होने से पहले ही ऊर्जा के वैकल्पिक गैर-परम्परागत स्रोतों को उपयोग में लाना प्रारम्भ कर दे ताकि हम अपनी पृथ्वी की प्राकृतिक सुन्दरता को बनाए रखते हुए विकास की दर को नया आयाम दे सकें। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में पवन ऊर्जा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

"आंचल" 906 ए/527 एच-3,
कक्कड़ नगर,
दरियाबाद, इलाहाबाद।

पृष्ठ 17 का शेष

अपारंपरिक ऊर्जा स्रोतों का.....

परिवर्तन लाना होगा जो व्यर्थ में ऊर्जा का अधिक भाग नष्ट न करें जैसे प्रेशर कुकर, हल्के धातुओं की कढ़ाई आदि। साथ ही हमें अपनी ऊर्जा व्यर्थ नष्ट करने वाली आदतों को भी सुधारना होगा जैसे बिजली के पंखों को चलते हुए छोड़कर चले जाना आदि। जब तक ऊर्जा के क्षेत्र में सतर्कता नहीं बरती जायेगी तब तक हम संकट का सामना नहीं कर सकते हैं।

हाल ही में हैस्को द्वारा जंगली पौधे "लैंटाना कमारा" का प्रयोग ऊर्जा के नए स्रोत के रूप में किया गया है। अमरीका से एक सजावटी पौधे के रूप में लाई गई यह झाड़ी सुरसा की भांति फैलकर वैज्ञानिकों का सिरदर्द बनी हुई है। यह न तो चारे के रूप में काम आती है न ईंधन के रूप में क्योंकि पशु इसे खाकर बीमार हो जाते हैं। जलाने पर विचित्र गन्ध का धुआं निकलता है। इतना ही नहीं यह जमीन की उर्वरा शक्ति को भी कम कर देती है। इसे काट दो तो एक सप्ताह में फिर वैसी ही हरी-भरी हो जाती है। किन्तु जब से हैस्को द्वारा कोट्द्वार के पास कुम्भी चौड़ के पार गैसी फायर विद्युत संयंत्र लगाया गया है इस झाड़ी के कोयले को इस संयंत्र में कम आक्सीजन में नियन्त्रित ढंग से जलाकर प्रोडयूसर गैस में बदल दिया जाता है। जब इस गैस को डीजल इंजन में छोड़ा जाता है तो 70 प्रतिशत डीजल की बचत होती है और इस बस्ती के 16 घरों में बिजली चालू हो जाती है। भारत सरकार के अपारम्परिक ऊर्जा विभाग ने हैस्को को ऐसे और संयंत्र लगाने के लिए आर्थिक सहायता दी है। ये संयंत्र उत्तर प्रदेश में पौड़ी जिले के लोक मणिपुर, शवपुर, थल नदी और बसचाली जैसे स्थानों पर लगाए जाएंगे।

ऊर्जा के इस संकट में दिनोंदिन महंगी होती लकड़ी के कारण वनों का विनाश तेजी से रहा है। इस विनाश को रोकने में इस झाड़ी से काफी सीमा तक सहायता मिलेगी। अब तक अवांछित बायोमास को नष्ट करने पर बल दिया जाता था किंतु इस नई तकनीक से बायोमास का प्रयोग बिजली बनाने के लिए किया जा सकता है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पारम्परिक स्रोतों को बचाते हुए पवन ऊर्जा, सूर्य ऊर्जा, सागर ऊर्जा एवं वानस्पतिक ऊर्जा का आवश्यकता के अनुरूप प्रयोग किया जाए, अन्यथा कुछ वर्षों के बाद कम होते ऊर्जा स्रोत एक अंधेरे भविष्य की ओर इशारा करते दीखेंगे।

ए-25 बी, दूसरी मंजिल,
जंगपुरा एक्सटेंशन,
नई दिल्ली

बच्चों के अधिकार

रामविहारी विश्वकर्मा

किसी भी देश के बच्चे ही उसके भविष्य की तस्वीर बनाते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय मनीषियों ने प्राचीन काल से ही बच्चों को अच्छे संस्कार देने के लिए आश्रम व्यवस्था का निर्धारण किया था। आधुनिक भारत में भी संविधान निर्माताओं ने इस बात की ओर ध्यान दिया और राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंतर्गत बच्चे के विकास को सुनिश्चित करने का संकल्प व्यक्त किया है। इतना ही नहीं, हमारी सरकार ने बालकों और बालिकाओं के अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन पर अपनी स्वीकृति दे दी है। संयुक्त राष्ट्र के इस कन्वेंशन के अनुच्छेद 28 और 32 में इस बात पर जोर दिया गया है कि बच्चों को (यानि चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों को) बुनियादी शिक्षा अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराई जाये और इस बात का पक्का प्रबंध किया जाये कि बच्चों का शोषण न होने पाए। संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन ने बच्चों के चार बुनियादी अधिकार निर्धारित किये हैं। बच्चों को अपने जीवन और अस्तित्व का अधिकार, स्वास्थ्य और पोषण का अधिकार, जीवनयापन का समुचित अधिकार और अपने नाम तथा राष्ट्रीयता का अधिकार। इसके साथ ही सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति के लिए सुरक्षा का अधिकार भी शामिल है। अन्य बुनियादी अधिकार हैं: विकास का अधिकार। इसमें शिक्षा का अधिकार, शैशव काल से ही बच्चों के विकास का और उनकी उचित देखरेख, सामाजिक सुरक्षा, मनोरंजन, सांस्कृतिक गतिविधियां और आराम का अधिकार आदि शामिल हैं। चौथा बुनियादी अधिकार सहभागिता का अधिकार माना गया है। इसमें बच्चों के विचारों को आदर देना, उन्हें अभिव्यक्ति की आजादी, धार्मिक स्वतंत्रता आदि को सम्मिलित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन पर स्वीकृति देने से भारत सरकार के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह दो वर्ष के अंदर ही अपनी पहली रिपोर्ट पेश करे और हर पांच साल के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करती रहे।

बच्चों के इन अधिकारों की इतनी पर्याप्त व्यवस्था के बावजूद उनका शोषण किसी न किसी रूप में जारी है। हमारे देश में समय-समय पर भारत सरकार ने बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए नीतियां बनाई और उनसे संबंधित कार्यक्रम भी शुरू किए गए। लेकिन प्रायः देखा गया है कि इन कार्यक्रमों पर पूरी तरह अमल करने के रास्ते में कई कठिनाइयां आती हैं। नई दिल्ली में हाल ही में भारतीय बाल कल्याण परिषद ने 'यूनीसेफ' की सहायता से एक कार्यशाला का आयोजन किया, जिसमें देशभर से कम से कम दो सौ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। उन्होंने बच्चों के नागरिक अधिकारों, पारिवारिक माहौल, स्वास्थ्य, शिक्षा, बाल मजदूरी और बच्चों के शोषण तथा इन सभी मामलों में जन संचार माध्यमों की भूमिका के बारे में विचार-विमर्श किया गया। इस कार्यशाला में संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन पर अमल करने के लिए भविष्य के कार्यक्रमों की सिफारिशें की गईं। इस सम्मेलन में लगभग उन्हीं बातों को दोहराया गया है जिनका हमारे संविधान के अनुच्छेद 24,39 और 45 में उल्लेख किया गया है।

भारत सरकार ने लगभग तीस करोड़ बच्चों की बुनियादी जरूरतों और अधिकारों को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय कार्य-योजना तैयार की है जिसमें स्वास्थ्य, पोषाहार, शिक्षा, सफाई, जल और पर्यावरण जैसे क्षेत्रों पर विशेष जोर दिया गया है। प्रधानमंत्री ने भी हाल ही में बाल अधिकारों के प्रति अपनी सजगता को व्यक्त करते हुए कहा था कि स्वास्थ्य की दृष्टि से जो उद्योग खतरनाक हैं, वहां बाल मजदूरी की प्रथा को हर हालत में समाप्त कर दिया जायेगा।

हमारे देश में संविधान की प्रतिबद्धता के अनुरूप 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति तैयार की गई थी। इस नीति के अनुसार बच्चे के जन्म से पूर्व यानि गर्भावस्था के दौरान तथा उसके जन्म के बाद पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराई जायेंगी ताकि उसका समुचित शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास हो सके। देश का यह दायित्व है कि इस तरह की सेवायें उपलब्ध कराता रहे जिससे बच्चों के समुचित विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियां उपलब्ध हों। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने समन्वित बाल विकास की योजनाओं पर अमल करने के लिए महिला और बाल विकास विभाग बनाया है, जो ऐसे बच्चों की बुनियादी आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान रख रहा है जो शहरों की तंग बस्तियों, जनजातीय इलाकों और ग्रामीण क्षेत्रों के हैं। इस समय देश में 3066 समन्वित बाल विकास योजनाएं चलाई जा रही हैं और इनसे एक करोड़ 63 लाख बच्चों और 32 लाख माताओं को लाभ पहुंच रहा है।

इसके अलावा राष्ट्रीय बाल कार्य योजना और राष्ट्रीय बालिका कार्य योजना भी शुरू की गई है जो सन् दो हजार ईसवी तक चलेगी। इस कार्यक्रम के तहत उन उपेक्षित किशोरियों की ओर विशेष ध्यान दिया जायेगा जो अपनी स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती हैं। उनके स्वास्थ्य की देखभाल, पौष्टिक आहार की व्यवस्था, साक्षर बनाने के प्रयास और व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे कार्यक्रमों को इसमें शामिल किया गया है। शिशुओं तथा छोटे बच्चों के स्वास्थ्य की देखरेख पर विशेष ध्यान के फलस्वरूप पाया गया है कि शिशुओं की मृत्यु दर में पर्याप्त कमी आई है। 1960 में शिशुओं की मृत्यु दर प्रति हजार 146 थी, 1990 में यह घटकर प्रति हजार 80 रह गई। भारत सरकार इस बात के लिए प्रयत्नशील है कि सन दो हजार तक यह दर घटकर प्रति हजार 60 रह जाए। इस उद्देश्य को लेकर बच्चों को कुपोषण से बचाने तथा स्वास्थ्य सम्बंधी सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए निरन्तर प्रयास किए जा रहे हैं। प्रायः देखा गया है कि अच्छा आहार न मिलने के कारण बच्चों में कई प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। पौष्टिक आहार की कमी का असर गर्भस्थ शिशुओं पर भी पड़ता है। हमारे देश में 70 प्रतिशत महिलाएं रक्ताल्पता से पीड़ित हैं, इसका असर शिशुओं पर भी पड़ता है। बचपन में उन्हें अतिसार, निमोनिया, टेटनस और खसरे जैसे रोगों का सामना करना पड़ता है। इन रोगों से बचने के लिए टीके और दवा आदि की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध कराई जा रही है। 'यूनीसेफ' ने बाल विकास की कई परियोजनाओं के लिए मदद दी है। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत भी सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही हैं।

हमारे देश में बेसहारा बच्चों की समस्या भी है। इन बच्चों का समुचित विकास नहीं हो पाता है। हमारे देश में इस समय करीब साढ़े चार करोड़ ऐसे बच्चे हैं जो बेसहारा होकर जीवनयापन कर रहे हैं। करीब बीस हजार ऐसे बच्चे हैं जो चूड़ियां बनाने के कारखानों में काम कर रहे हैं। इन कारखानों में काम करने वाले बच्चे प्रायः विकलांग हो जाते हैं। इसी तरह बहुत से बच्चे दियासलाई बनाने के कारखानों, शीशे के गिलास बनाने वाले कारखानों, बीड़ी के कारखानों, कालीन बनाने वाले कारखानों आदि में काम करते हैं। बहुत से बच्चे खतरनाक उद्योगों में काम-धन्धों में लगे हैं जहां उनके शारीरिक रूप से विकलांग होने की आशंका होती है। कानून में बाल मजदूरी पर पाबंदी लगाने के प्रावधान हैं लेकिन इसके बावजूद कारखानों के मालिक इस तरह के कानूनों का उल्लंघन करते रहते हैं। बच्चों के मां-बाप भी बच्चों को काम पर भेजने को मजबूर होते हैं। बच्चों से काम तो पूरा लिया जाता है लेकिन मजदूरी देते समय उन्हें बालक बताया जाता है और आधी या उससे भी कम मजदूरी दी जाती है।

हमारे समाज के सामने यह एक बड़ी चुनौती है। जिस समय बच्चों के खेलने-कूदने और शारीरिक तथा मानसिक विकास की उम्र होती है उस समय वे अपने परिवार की उदर-पूर्ति करने के लिए शोषण का शिकार बन जाते हैं। बच्चों के नन्हें हाथों में जब खिलौने और कलम होनी चाहिए तब उनके हाथों में पत्थर तोड़ने के हथौड़े होते हैं उन्हें, झूठे बर्तन मांजने और रात-रात भर जागकर काम करके प्रतिकूल स्थितियों में रहना पड़ता है। उन्हें पहनने को न तो अच्छे वस्त्र मिलते हैं, न शिक्षा मिलती है, न मनोरंजन अथवा कहानियां सुनने की फुर्सत मिलती है, न उन्हें स्नेह मिलता है और न उन्हें उम्मीद होती कि वे कभी अपने गांव और घरों में जाकर कुछ आराम कर सकेंगे। बहुत से बच्चे घरों में या चाय की दुकानों में या कैंटीनों में नौकर के रूप में काम करते हैं और उनकी स्थिति बहुत ही दयनीय होती है।

हमारे देश में खतरनाक उद्योगों में काम करने को छोड़कर बाकी बाल मजदूरी पर कानूनी रूप से प्रतिबंध नहीं लगाया गया है। इसकी वजह से उनके मालिक कानून के शिकंजे से बच जाते हैं। बहुत से उद्योगपति बच्चों से काम तो लेते हैं लेकिन वे अपनी बहियों में उनका नाम तक शामिल नहीं करते। इस तरह उन बच्चों की नौकरियों की भी कोई सुरक्षा नहीं होती है। इस तरह बाल श्रमिकों का भयंकर रूप से शोषण जारी है। सत्तर प्रतिशत बच्चे प्रायः जहां काम करते हैं वहीं पर उन्हें सोने और रहने की व्यवस्था करनी पड़ती है, जहां न तो कोई साफ-सुथरी व्यवस्था होती है और न उपयुक्त वातावरण। कई बार उनके साथ दुर्व्यवहार भी किया जाता है। इन सब कठिनाइयों के बावजूद उन्हें मालिक से जो भी पैसे मिलते हैं कि वे सही ढंग से गुजारा करने के लिए पर्याप्त नहीं होते। कुछ बच्चे नशीले पदार्थों के सेवन और धूम्रपान आदि बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं, लेकिन इन सबके लिए उन बच्चों की अपेक्षा हमारा समाज ही जिम्मेदार है जिसने इतना शोषण किया कि उनसे उनके अस्तित्व का अधिकार ही छीन लिया।

तमिलनाडु में शिवकाशी के माचिस बनाने वाले सात हजार कारखानों में करीब 45 हजार बच्चे काम कर रहे हैं। इन मासूम बच्चों को ठीक तरह से यह भी नहीं पता होता है कि कब सूर्योदय और कब सूर्यास्त होता है। बचपन में ही ये बच्चे बुढ़ापे की ओर

अग्रसर हो जाते हैं। ये अक्सर चर्म रोग, फेफड़ों की बीमारी और रक्ताल्पता आदि के शिकार हो जाते हैं। मध्य प्रदेश में बीड़ी उद्योग में करीब दो लाख बच्चे काम कर रहे हैं। जयपुर के जवाहरात उद्योग में आठ हजार से अधिक बाल श्रमिक काम कर रहे हैं। हमारे संविधान में बाल मजदूरी के निषेध के लिए कानून के प्रावधान तो हैं लेकिन उन पर सही तरीके से अमल नहीं हो पा रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चों को बचपन से ही अच्छा वातावरण देने का प्रयास किया जाए। उपेक्षित बच्चों, किशोर अपराधियों तथा नशे की लत वाले बच्चों के सुधार के लिए उपाय करना और उनके पुनर्वास की सुविधाएं उपलब्ध कराना बहुत आवश्यक है। जो बच्चे बेसहारा हैं, उन्हें रहने की सुविधाएं देकर उन्हें छोटे-छोटे काम धंधों में लगाया जा सकता है।

संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के अनुसार विकासशील देशों में करीब 18 करोड़ बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। विभिन्न देशों में युद्ध तथा अन्य दैवी आपदाओं के समय भी प्रायः सबसे अधिक शिकार बच्चे ही होते हैं। हमारे देश में हर वर्ष एक से छह वर्ष की उम्र के 60 लाख बच्चों की मृत्यु हो जाती है। इन सब समस्याओं पर हमें गहराई से विचार करना चाहिए। आखिर स्वास्थ्य का अधिकार तो बच्चे का बुनियादी अधिकार है और उसकी ओर हमारे समाज तथा सरकार को पूरी तरह ध्यान देना चाहिए।

हमारे देश में बाल मजदूरों की समस्या बहुत जटिल है। सरकार ने इस समस्या का निदान करने के लिए अनेक अधिनियम बनाये हैं, जैसे--कारखाना अधिनियम-1948, खान अधिनियम-1952, प्रशिक्षु अधिनियम-1961, प्रशिक्षु अधिनियम-1962, इंडियन मर्चेंट शिपिंग एक्ट-1961, बीड़ी और सिगार एक्ट 1966, बंधित श्रम पद्धति अधिनियम-1975 आदि। ये कानून बाल मजदूरों के हित को सुरक्षित करने के लिए हैं। 1981 में केन्द्रीय बाल श्रम सलाहकार बोर्ड का गठन किया गया था, बाद में 1990 में इसका पुनर्गठन किया गया था।

बाल अधिकारों की रक्षा के लिए शिशु के जन्म से ही कदम उठाने आवश्यक हैं जैसे बच्चे के जन्म का पंजीकरण और उसका नाम देना उसके व्यक्तित्व की पहली सीढ़ी है। इसके बाद अभिभावकों को ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे का पालन-पोषण और देखभाल सही ढंग से की जाए। इसके लिए आवश्यक है कि मां-बाप उन्हें उपयुक्त आहार और पौष्टिक पदार्थ उपलब्ध करायें। कम से कम छह माह तक बच्चे को मां का दूध अवश्य उपलब्ध हो। समय-समय पर उसे टीके लगवाये जायें, अतिसार और टेटनस आदि से बचाव के लिए उचित उपाय किए जाएं। उसे सुरक्षित पेयजल और साफ-सुथरे माहौल में रखा जाए।

बच्चों के साथ बचपन से ही समान व्यवहार किया जाना चाहिए। बच्चे का भी एक अलग अस्तित्व है, उसे उचित सम्मान देना हमारा दायित्व है। हर बच्चे का यह बुनियादी अधिकार है कि उसे समान समझा जाये। उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए और उसका किसी तरह से शोषण नहीं होना चाहिए। बच्चों के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकास के लिए उनके साथ बातें करना, हंसना-खेलना और स्नेह व्यक्त करना उनके सही विकास के लिए आवश्यक कार्य है। बच्चे का सर्वांगीण विकास होने पर ही परिवार की व्यवस्था सुदृढ़ होती है, जब बच्चे की प्रतिभा का समुचित विकास होता है तो वह परिवार का सक्षम सदस्य बनता है। जिन मां-बाप के बच्चे अलगाव की स्थिति में रहते हैं उनमें असुरक्षा की भावना पैदा होती है। बच्चों को सही जानकारी और शिक्षा उपलब्ध कराना उनका बुनियादी अधिकार है। हर बच्चे को अनुशासित रखते हुए आचार-व्यवहार की शिक्षा के साथ-साथ यथासंभव अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराई जाए। बच्चे को यह अधिकार है कि उसे परिवार का सक्रिय सदस्य माना जाए जिसके लिए उसे सामुदायिक शिक्षा मिलनी चाहिए, बच्चे को यह भी अधिकार है कि उसे परिवार के अंदर एकांत में बैठकर पढ़ने-लिखने और चिंतन-मनन की तथा अपने भविष्य के लिए कार्यक्रम तैयार करने का अधिकार मिले। इन अधिकारों को उपलब्ध कराने में मां-बाप पूरा-पूरा योगदान कर सकते हैं। बच्चे का यह अधिकार है कि वह अपनी क्षमता का पूरा-पूरा विकास करे और उसके इस कार्य में उसके माता-पिता तथा उसके परिवार को प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए। परिवार बच्चे को सांस्कृतिक मूल्य देकर, उसमें अच्छे संस्कार बिठाकर उसे समाज का उपयोगी नागरिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शैशवावस्था से लेकर चौदह वर्ष की आयु तक जिन बच्चों को उनके माता-पिता या अभिभावकों द्वारा तथा समाज द्वारा उनके अधिकार उपलब्ध कराए जाते हैं वे बच्चे निश्चित रूप से समाज के बेहतर नागरिक बन पाते हैं। बाल अधिकार के समुचित संरक्षण से ही बच्चे का स्वस्थ विकास हो सकता है और हमारे संविधान में बच्चों के अधिकार तथा उनके विकास के बारे में जो अपेक्षा की गई है, वह तभी पूर्ण हो सकेगी।

103, एच सेक्टर-4,
डी.आई.जेड. एरिया,
नई दिल्ली

राजस्थान में

साक्षरता के बढ़ते कदम

ओ. पी. शर्मा

निरक्षरता समाज के लिए अभिशाप है। जहां निरक्षरता है वहां अनेकानेक समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। भारत की अथाह प्राकृतिक संपदा आर्थिक जगत में उसे सिरमौर बनाने की क्षमता रखती है किंतु जनसंख्या की विस्फोटक वृद्धि प्रगति के पथ पर बढ़ने में मुख्य बाधा है। इसका मुख्य कारण जन सामान्य में व्याप्त निरक्षरता है। यदि साक्षरता में वृद्धि कर दी जाए तो लोगों की बढ़ रही बेकाबू भीड़ कम होगी, संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग होगा और आर्थिक विकास भी आशानुरूप होगा।

आजादी के चार दशक बीत चुके हैं, पांचवां दशक भी समाप्त प्रायः है, किन्तु साक्षरता में अपेक्षित बढ़ोत्तरी नहीं हो सकी। धीमी गति से जो वृद्धि हुई वह अत्यल्प है।

हाल ही की जनगणना के अनुसार 7 वर्ष और अधिक आयु की जनसंख्या में 52.21 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं। पुरुषों में साक्षरता का प्रतिशत 64.31 है। महिलाओं में साक्षरता की स्थिति बड़ी दयनीय है, केवल 39.29 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर हैं। जाहिर है 35.69 प्रतिशत पुरुष और 60.71 प्रतिशत महिलाएं पढ़ लिख नहीं सकते हैं। साक्षरता की दृष्टि से कुछ प्रदेश संतोषजनक स्थिति में है तो कुछ के हालात काफी बदतर हैं। यही निरक्षरता उनके विकास के पिछड़ेपन का मुख्य कारक है। केरल, मिजोरम, गोवा, तमिलनाडु सर्वाधिक साक्षरता वाले राज्य हैं। विहार सर्वाधिक निरक्षरों वाला राज्य है। कमोवेश यही हालात राजस्थान के हैं। विहार में 61.52 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं। राजस्थान में निरक्षरता 61.45 प्रतिशत है। राजस्थान महिलाओं की साक्षरता में सबसे नीचे है। यहां केवल 20.44 प्रतिशत महिलाएं साक्षर हैं। जहां महिलाओं में निरक्षरता इस कदर हो वहां समस्याएं कितनी विकराल होंगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। देश में निरक्षरता के अभिशाप को समाप्त करने के लिए वर्ष 1988 में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन शुरू हुआ। मिशन के अनुसार कुल निरक्षरों का 50 प्रतिशत देश के चार बड़े हिन्दी भाषी राज्यों विहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में है। यदि इन चार राज्यों में महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश को जोड़ दिया जाए तो देश के कुल निरक्षरों का 70 प्रतिशत इन सात राज्यों में है। पूरी दुनिया में जितने निरक्षर हैं उनमें करीब 15 प्रतिशत बिहार, राजस्थान, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश में है।

वर्ष 1994 में देश के 267 जिलों में सम्पूर्ण साक्षरता अभियान चल रहा है। इसके अन्तर्गत 3 करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों को शिक्षित किया जा रहा है। आठवीं योजना के दौरान 345 जिलों को अभियान में शामिल करने और 10 करोड़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने का लक्ष्य रखा गया है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्थापना के साथ देश में साक्षरता के लिए जन अभियान की शुरुआत हुई। प्रभावी प्रयासों से 4 फरवरी 1990 को केरल का एर्नाकुलम जिला संपूर्ण साक्षर घोषित किया गया। एर्नाकुलम की सफलता से प्रेरित होकर अन्य राज्यों ने निरक्षरता के अभिशाप को मिटाने का संकल्प किया। आज देश के कई जिले संपूर्ण साक्षर हो गए हैं। इनमें पश्चिम बंगाल के वर्धमान, मिदनापुर, हुगली, वीरभूम, कर्नाटक के दक्षिणी कन्नड़, महाराष्ट्र के वर्धा एवं सिंह दुर्ग और गुजरात के गांधीनगर, भावनगर, खेड़ा जिले शामिल हैं।

राजस्थान में निरक्षरों की भरमार है किन्तु प्रशासन, स्वयंसेवी संस्थाएं और नागरिक निरक्षता के अंधकार को मिटाने के लिए कटिबद्ध हैं। अजमेर जिला उत्तर भारत का पहला संपूर्ण साक्षर जिला घोषित हुआ है। राजस्थान का डूंगरपुर जिला देश का पहला जनजाति बहुल जिला है जिसने कि संपूर्ण साक्षर होने का गौरव प्राप्त किया है। वर्तमान में अजमेर तथा डूंगरपुर जिले में उत्तर साक्षरता कार्यक्रम चलाया जा रहा है। भरतपुर में संपूर्ण साक्षरता मूल्यांकन प्रक्रिया में है जबकि सीकर, पाली, टोंक, बारां, उदयपुर, राजसमंद और अलवर में संपूर्ण साक्षरता अभियान चलाया जा रहा है। इनके अलावा बूंदी, बांसवाड़ा, भीलवाड़ा, चित्तौड़गढ़, झूंझनू में वातावरण निर्माण और परियोजना प्रस्ताव रचना कार्यक्रम चल रहा है। इन पांच जिलों में 1994-95 के उतरार्द्ध में संपूर्ण साक्षरता कार्यक्रम प्रारंभ हो जाएगा।

प्रयासों के बावजूद अभी देश के समूचे परिवेश में निरक्षता

शेष पृष्ट 27 पर

गोबर

✍ प्रेम भटनागर

"दिमाग में तो गोबर भरा है।" मंदबुद्धि वाले या कम समझने वाले व्यक्ति के लिए इस मुहावरे का प्रयोग होता है। पर गोबर में तो असाधारण उर्वरता छिपी रहती है। इसलिए मंदबुद्धि या कम समझ वाले के लिए इस मुहावरे का प्रयोग तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता।

कृषि विशेषज्ञों ने गोबर को एक असाधारण प्राकृतिक खाद बताया है। पर एक आंकड़े के अनुसार यही बेहतरीन खाद वाला गोबर उपले के रूप में ग्रामीण चूल्हों में जल कर राख हो जाता है। ग्रामीण ईंधन की चाहे यह दस प्रतिशत मांग पूरी करता है पर ईंधन के रूप में इसे उपयोग न करने से अनाज का उत्पादन काफी बढ़ाया जा सकता है।

राष्ट्रीय कृषि आयोग ने 1976 में अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि "गोबर को चूल्हे में जलाना एक अपराध है" पर ग्रामीण चूल्हों में इसे जलाना बंद हुआ? यही नहीं अगर कानून बनाकर गोबर जलाना एक दण्डनीय अपराध भी घोषित कर दिया जाये तब भी क्या ग्रामीण चूल्हों में गोबर जलाना रुक जाता, हर्गिज नहीं।

ग्रामीण जनता के लिए तो गोबर और लकड़ी ईंधन का मुख्य स्रोत हैं। ग्रामीण जनता के लिए गोबर सहज और बिना मोल मिलने वाला पदार्थ है। गैस कनेक्शन तो केवल शहरों और बड़े कस्बों में ही उपलब्ध हैं। मिट्टी के तेल की आवंटित मात्रा कितने उपभोक्ताओं को मिल पाती है, यह सब जानते ही हैं।

"गोबर मत जलाओ यह एक बेहतरीन प्राकृतिक खाद है।" "लकड़ी मत जलाओ" इससे पर्यावरण को भारी नुकसान होता है।" ग्रामीण जनता को जब तक इनके विकल्प के रूप में दूसरा ईंधन उपलब्ध नहीं कराया जाएगा तब तक "गोबर मत जलाओ", "लकड़ी मत जलाओ" के उपदेश का कोई असर नहीं होगा।

सवाल यह है कि तब क्या गोबर को ग्रामीण चूल्हों में इसी तरह जलकर राख होने दिया जाए। एक तरफ गोबर बेहतरीन खाद है तो दूसरी ओर ग्रामीण के लिए सहज उपलब्ध होने वाला चूल्हे का ईंधन भी है। अतः कोई बीच का रास्ता ढूंढना होगा। एक ऐसा उपाय ढूंढा जाए जिससे सांप भी मरे और लाठी न टूटे। यानि गोबर का खाद और ईंधन दोनों ही रूप में एक साथ इस्तेमाल किया जा सके।

सौभाग्य से वैज्ञानिकों ने वह उपाय ढूंढ लिया है। इससे गोबर का दोनों ही रूपों में इस्तेमाल किया जाना संभव है। वह उपाय है "गोबर गैस प्लांट" या "बायोगैस"। गोबर गैस या बायोगैस ग्रामीण जनता के लिए एक वरदान ही है। इससे एक तरफ ऊर्जा प्राप्त होती है तो दूसरी तरफ उसी का उपयोग खाद के रूप में भी किया जाना संभव हुआ है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के अनुसार देश में 25 करोड़ पशुओं से 86 करोड़ टन गीला गोबर प्राप्त होता है। इस गोबर में 2000 मेगाटन ऊर्जा छिपी है। देश में गोबर की उपलब्धता के आधार पर 20 लाख बायोगैस संयंत्र बनाने की क्षमता आंकी गई है। पर देश में अभी तक कुल 2 लाख संयंत्र ही लगे हैं जिसमें से भी केवल साठ प्रतिशत ही चालू स्थिति में हैं।

गोबर का देश में इतना महत्व देखते हुए इसकी एक राष्ट्रीय नीति होनी चाहिए। विडम्बना ही है कि रासायनिक खाद पर सरकार द्वारा सब्सिडी आज भी जारी है। ग्रामीण जनता के जीवन का आधार गोबर जो ऊर्जा देता है तथा एक बेहतरीन खाद भी है, उस पर सब्सिडी समाप्त की जाती है कि देश आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा है।

गोबर भारत की आर्थिक ही नहीं बल्कि हमारी संस्कृति से भी जुड़ा है। उत्सव हो, त्यौहार हो, शादी-विवाह हो या पूजापाठ ही क्यों न हो, उसकी पवित्रता तब तक पूरी नहीं होती जब तक गोबर से लिपाई नहीं हो जाती।

आज जरूरत इस बात की है कि बायोगैस यानी गोबर संयंत्र की उपयोगिता और लाभ का ग्रामीण जनता में व्यापक प्रचार किया जाए। गोबर गैस संयंत्र सस्ते मूल्य पर बड़ी मात्रा में ग्रामीण जनता को उपलब्ध कराने होंगे। जब तक ऐसा नहीं किया जाता है तब तक ग्रामीण चूल्हों में गोबर जलता है और जलता ही रहेगा।

35/फतहपुरा (पुराना),
सेवा मंदिर मार्ग,
उदयपुर-313001,
(राजस्थान)

उत्तर प्रदेश

वैकल्पिक ऊर्जा : आवश्यकता और विकास

डा. गजेन्द्र पाल सिंह

ऊर्जा विकास का अभिप्राय है सस्ती दर पर विद्युत उत्पादन और उसकी निरन्तर उपलब्धता। इससे केवल औद्योगीकरण और यन्त्रीकरण की संभावनाएं ही नहीं बढ़ती हैं बल्कि कृषि विकास, अधिकाधिक रोजगार के अवसरों का सृजन, मानव जीवन का स्तरोन्नयन और उपलब्ध श्रम शक्ति का अधिकाधिक सफलतापूर्वक उपयोग होने में भी सहायता मिलती है। उत्तर प्रदेश 2,94411 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ देश का चौथा बड़ा राज्य है जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 8.9 प्रतिशत है पर जनसंख्या की दृष्टि से (1991 की जनगणना के अनुसार राज्य की जनसंख्या 13,91,12,287 है जो देश की कुल जनसंख्या का सर्वाधिक लगभग 16.44 प्रतिशत है) यह राज्य देश में प्रथम स्थान रखता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह राज्य देश की अधिकाधिक जनसंख्या का भार वहन करने वाला राज्य है। अतः अधिकाधिक जनसंख्या के भरण-पोषण, रोजगार, जीवन स्तर में सुधार व प्रदेश की समृद्धि में अधिकाधिक वृद्धि लाने के लिए यह पूर्ण अपेक्षित है कि कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्रों के विकास कार्य को उच्च प्राथमिकता के आधार पर किया जाए जो ऊर्जा की अधिकाधिक उपलब्धता पर निर्भर है।

विकास कार्यक्रमों के सफल सम्पादन में ऊर्जा स्रोतों की बड़ी ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है, पर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों (तेल, कोयला, प्राकृतिक गैस व परमाणु शक्ति) के तीव्र दोहन, बढ़ती हुई लागत, पर्यावरण प्रदूषण व विकास प्रक्रिया की ऊर्जा पर अपरिहार्य निर्भरता को देखते हुए वैकल्पिक ऊर्जा विकास कार्यक्रम को उच्च प्राथमिकता के आधार पर स्वीकार करना जरूरी है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो विशेषज्ञों के अनुसार सन् 2010 तक इन स्रोतों से ऊर्जा उत्पादन की गति बहुत धीमी पड़ जायेगी और धीरे-धीरे ये स्रोत समाप्त होते चले जाएंगें। अतः ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों के विकास हेतु केन्द्र सरकार ने 12 मार्च 1981 को एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग गठित किया। इसी क्रम में 6 सितम्बर 1982 को ऊर्जा मंत्रालय में गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग की स्थापना की गई। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी वैकल्पिक ऊर्जा विकास और संरक्षण हेतु अप्रैल 1983 में वैकल्पिक ऊर्जा विकास संस्थान की स्थापना की।

यह संस्थान राज्य में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा और बायोगैस विकास कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता के आधार पर संचालित कर रहा है। इस संस्थान ने ग्रामीण और नगरीय दोनों ही क्षेत्रों में ऊर्जा की घरेलू और सामुदायिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों पर आधारित अत्यंत ही महत्वपूर्ण और व्यापक कार्यक्रम चलाए हैं। इतना ही नहीं इस संस्थान ने क्षेत्रीय ग्रामीण प्रौद्योगिकी पर आधारित उत्पादन कार्यों के लिए ऊर्जा की पर्याप्त उपलब्धता की दिशा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है।

सौर ऊर्जा

उत्तर प्रदेश मुख्य रूप से उष्ण प्रधान शीतोष्ण जलवायु के अन्तर्गत आता है। हिमालय से लगे हुए पर्वतीय जिलों को छोड़कर शेष सभी जिलों में जाड़े के दिनों में भी तापमान सामान्यतयाः 12.5 डिग्री सेन्टीग्रेड से लेकर 17.5 डिग्री सेन्टीग्रेड तथा गर्मी के दिनों में 27.5 डिग्री सेंटीग्रेड से लेकर 32.5 डिग्री सेंटीग्रेड तक रहता है। वैसे राज्य का जाड़े व गर्मी का न्यूनतम व अधिकतम तापमान क्रमशः 3.4 डिग्री सेन्टीग्रेड और 43 डिग्री सेन्टीग्रेड के आसपास होता है। इस प्रकार राज्य में धूप की प्रबल प्रखरता के कारण सौर ऊर्जा विकास की दिशा में बहुत अधिक सम्भावनाएं हैं।

विकास और अनुसंधान की दिशा में वैकल्पिक ऊर्जा विकास संस्थान की सतत सक्रियता के कारण अनेक ताप तकनीकों का विकास किया जा चुका है जिनका उपयोग खाना पकाने, दूध और पानी गर्म करने, बिजली पैदा करने, पानी से खारापन दूर करने, कमरों को गर्म करने व ग्रामीण विद्युतीकरण के लिए किया जा रहा है। सौर फोटोवोल्टीक प्रौद्योगिकी की सहायता से सूर्य के प्रकाश को सीधे बिजली में परिवर्तित किया जाता है। इस

* अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, कुंवर सिंह महाविद्यालय, बलिया (उ.प्र.)

प्रौद्योगिकी के तहत राज्य में कुल 124 किलोवाट क्षमता के 29 सौर फोटोवोल्टीक विद्युत गृहों की स्थापना की जा चुकी है जिनका 29 गांवों के लोग ऊर्जा की घरेलू व सामुदायिक आवश्यकताओं के लिए सफलतापूर्वक उपयोग कर रहे हैं। इसी के साथ ही औद्योगिक और घरेलू क्षेत्रों में 10 लाख लीटर प्रतिदिन क्षमता के सौर जल तापीय संयंत्रों की भी स्थापना की जा चुकी है जिसमें मुरादाबाद व कानपुर की दुग्धशालाओं में क्रमशः 75,000 लीटर व 70,000 लीटर क्षमता के संयंत्र और श्री के. डी. सिंह बाबू स्टेडियम लखनऊ में स्थापित सौर जल तापीय संयंत्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी क्रम में राज्य में खाना पकाने हेतु 26,819 सोलर कुकर, घरेलू प्रकाश हेतु 9,935 बत्तियां, 2,700 सौर पथ प्रकाश यंत्रों और पानी निकालने हेतु 170 सौर फोटोवोल्टीक पम्पों की स्थापना की जा चुकी है। अनुसंधान व विकास परियोजनाओं के अन्तर्गत सौर फोटोवोल्टीक तकनीक पर आधारित 100-100 किलोवाट क्षमता की दो परियोजनाएं अलीगढ़ में ग्राम कल्याणपुर और मऊ घोसी में स्थापित की जा रही हैं। इन परियोजनाओं से उत्पादित विद्युत का उपयोग घरेलू प्रकाश, पथ प्रकाश और सिंचाई कार्यों में किया जाएगा। इस प्रकार सौर ऊर्जा विकास की दिशा में राज्य के वैज्ञानिकों का प्रयास सराहनीय होते हुए भी सौर ऊर्जा विकास की संभावनाओं को देखते हुए अभी अपर्याप्त ही है। अतः इस दिशा में और अधिक अनुसंधान व गहन प्रयास की आवश्यकता है।

पवन ऊर्जा

पवन ऊर्जा का उपयोग हमारे देश में परम्परागत रूप से अति प्राचीन काल से पालयुक्त नौकाओं और पवन चक्कियों में किया जा रहा है। वर्तमान समय में पवन ऊर्जा का उपयोग विद्युत पैदा करने व सिंचाई के लिए पवन चक्कियों की सहायता से पानी निकालने के लिए किया जा रहा है। पवन चक्कियों की सहायता से 5 हार्स पावर के डीजल और विद्युत पम्प सेटों के बराबर पानी निकाला जाता है। ये पवन चक्कियां कम व तेज हवा में भी सफलतापूर्वक कार्य करती हैं। पवन ऊर्जा के समुचित विकास व उपयोग के लिए केन्द्रीय बिजली अनुसंधान संस्थान, भारतीय विज्ञान संस्थान, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान व नेडा में उच्च प्राथमिकता के आधार पर अनुसंधान कार्य किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में पवन ऊर्जा विकास की दिशा में 66.12 किलोवाट क्षमता के 20 एरोजेनरेटरों की स्थापना का कार्य पूरा किया जा चुका है तथा साथ ही 114 किलोवाट क्षमता के 10 एरोजेनरेटरों की स्थापना का कार्य पूरा होने वाला है। इन सभी यन्त्रों के सफलतापूर्वक संचालन से राज्य के 212 गांवों में विद्युतीकरण का कार्य सम्पन्न हो जाएगा। राज्य के पर्वतीय अंचल में पवन ऊर्जा के प्रयोग से विद्युत उत्पादन हेतु 10 मेगावाट क्षमता की 3,500 करोड़ रुपये लागत की परियोजना पूरी तरह से तैयार है। राज्य के बुन्देलखण्ड क्षेत्र व गाजीपुर जनपद में लगभग 518 पवन चक्कियों और बुन्देलखण्ड में ही 5 डीपवेल विण्ड पम्पों की भी स्थापना का कार्य पूरा किया जा चुका है। पवन चक्कियों के विकास की दिशा में राज्य में उच्च प्राथमिकता के आधार पर और अधिक अनुसंधान व विकास कार्य किए जाने की आवश्यकता है। जिस दिन इस दिशा में हम अपेक्षित सफलता प्राप्त कर लेंगे उसी दिन यह राज्य कृषि व ऊर्जा विकास तथा संरक्षण की दिशा में देश में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेगा।

जल ऊर्जा

प्रदेश में गंगा यमुना जैसी प्रमुख नदियों के साथ-साथ गोमती, घाघरा, राप्ती, गण्डक, शारदा, सोन, टोंस, चम्बल, बेतवा अपने आप में जल ऊर्जा विकास की अनन्त सम्भावनाएं संजोए हुए हैं। लघु जल विद्युत ऊर्जा कार्यक्रम के अन्तर्गत 477 किलोवाट क्षमता की 10 परियोजनाओं की स्थापना राज्य के उतरांचल में की जा चुकी है तथा 100 किलोवाट क्षमता की भी एक परियोजना अपने अन्तिम चरण में है। इसके अतिरिक्त 600 किलोवाट क्षमता की नौ परियोजनाओं की भी स्थापना अलमोड़ा जनपद के कपकोट विकास खण्ड में लगभग पूरी हो चुकी है। इन परियोजनाओं की लागत में कमी और ऊर्जा विकास की सम्भावनाओं में अपेक्षित वृद्धि लाने के लिए नेडा द्वारा क्रास फलो टरबाइन का विकास किया गया है। साथ ही पर्वतीय अंचलों में 280 पनचक्कियों की स्थापना की जा चुकी है जिनका आटा चक्की व तेलघानी आदि में सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा है।

बायोगैस ऊर्जा

गैर परम्परागत वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों में बायोगैस का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस ऊर्जा स्रोत का मुख्य आधार गोबर या मानव मल है। अतः इसे गोबर गैस संयंत्र भी कहा जाता है। इस संयंत्र के उपयोग से धुआं रहित ईंधन, रोशनी और कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु खाद भी प्राप्त होती है। राज्य में अब तक कुल 6,065 घनमीटर क्षमता के 86 सामुदायिक व संस्थागत बायोगैस संयंत्रों

और मानव मल पर आधारित 1,166 घनमीटर क्षमता के 105 संयंत्रों की स्थापना की जा चुकी है। इसके साथ ही साथ 380 घनमीटर क्षमता की 35 परियोजनाओं की भी स्थापना का कार्य लगभग पूरा हो चुका है।

वैकल्पिक ऊर्जा विकास संस्थान ने एक परियोजना के तहत पर्वतीय क्षेत्र के 4,000 गांवों का विविध वैकल्पिक ऊर्जा संयंत्रों द्वारा विद्युतीकरण करने का लक्ष्य रखा है जिस पर लगभग 186 करोड़ रुपये की लागत आने की संभावना है। वैकल्पिक ऊर्जा विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में गुणवत्ता और सुधार कार्य करने के उद्देश्य से चिनहट, लखनऊ में संस्थान द्वारा एक वैकल्पिक ऊर्जा शोध विकास तथा प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना की गयी है। यह केन्द्र संयंत्रों के अनुरक्षण, संचालन, आवश्यक सुधार व प्रशिक्षण का कार्यक्रम संचालित कर रहा है। इस संस्थान में विद्युत बैक अप वाले सोलर कुकर को विकसित किया गया है जिसका भोजन पकाने के लिए सूर्य के प्रकाश के अभाव में भी सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। वैकल्पिक ऊर्जा विकास का लाभ राज्य के सभी अंचलों तक पहुंचाने के लिए संस्थान द्वारा राज्य के 60 जनपदों में परियोजना कार्यालय स्थापित किए जा चुके हैं तथा शेष नवनिर्मित जिलों में भी परियोजना कार्यालय प्रस्तावित हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राज्य में वैकल्पिक ऊर्जा विकास संस्थान गैर परम्परागत ऊर्जा विकास की दिशा में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण व अग्रणी भूमिका अदा कर रहा है। पर वैकल्पिक ऊर्जा विकास के इन स्रोतों के अतिरिक्त भू ताप ऊर्जा व कूड़े कचरे से ऊर्जा आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें वैकल्पिक ऊर्जा विकास संस्थान को अभी बहुत कुछ करना बाकी है। ऐसी स्थिति में प्रदेश की 13 करोड़ से अधिक जनसंख्या के भरण-पोषण, स्वावलम्बन व समृद्धि के लिए यह परमावश्यक है कि गैर परम्परागत ऊर्जा विकास व संरक्षण की दिशा में और अधिक सफल व प्रभावी कार्यक्रमों का क्रियान्वयन प्राथमिकता के आधार पर किया जाए जिससे देश व प्रदेश में ऊर्जा संकट की समस्या सदैव के लिए हल हो जाए।

पृष्ठ 23 का शेष

साक्षरता के....

का अंधकार है। ग्रामीण परिवेश के हालात बद से बदतर है। शहरी गरीबों की स्थिति भी बेहतर नहीं। निरक्षरता के कारण अधिसंख्य आबादी रूढ़ियों और अंधविश्वास में डूबी हुई है। ऐसे वातावरण में निरक्षरता को मिटाना काफी पेचीदगी का काम है। देश में गरीबी की समस्या भी कम भयावह नहीं है। जन्म लेने वाले बच्चे को बचपन से ही दो जून रोटी की व्यवस्था में जुट जाना पड़ता है। चाहकर भी उनकी साक्षरता में रुचि नहीं होती। उनके निरक्षर अभिभावक भी उन्हें शिक्षा के लिए प्रेरित नहीं कर पाते। आजादी के अनेक बरस बीत जाने के बावजूद भी देशवासियों में इस तरह की "सोच" कम चौंकाने वाली बात नहीं है।

साक्षरता में बढ़ोतरी के लिए सूझबूझ से काम लेने की जरूरत है। कारगर योजनाएं हों, साथ में उनका कारगर क्रियान्वयन हो। यह अकेले सरकार के बूते की बात नहीं इसके लिए जनसहयोग भी आवश्यक है। कर्मठ कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो समर्पित भाव से इस काम को अंजाम दे सके। वित्तीय साधनों की भी कमी नहीं आने दी जानी चाहिए। सभी को साक्षर बनाने की मुहिम हमें आजादी की लड़ाई की भांति लड़नी होगी। ऐसे राष्ट्र जो निरक्षरता उन्मूलन में काफी आगे बढ़ चुके हैं, उनसे प्रेरणा लेनी होगी। सभी देशवासी शिक्षा पाने को अपना कर्तव्य समझें तब कहीं जाकर हम निरक्षरों की लगातार बढ़ रही संख्या को थाम सकेंगे।

शांति दीप, जटवाड़ा मानटाउन,
सवाई माधोपुर - 322001 (राज.)

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता :

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस
नई दिल्ली-110001

एक प्रति : तीन रुपये **वार्षिक चंदा : 30 रुपये**

भेड़ पालन : एक लाभदायक व्यवसाय

गंगाशरण सैनी

भारत के पशुपालन में भेड़ पालन का विशिष्ट और महत्वपूर्ण स्थान है। भेड़ पालन का मुख्य उद्देश्य देश को ऊन उत्पादन के साथ मांस उत्पादन में भी आत्मनिर्भर बनाना है। इसके अलावा भेड़ों से खाद और मेमनों की प्राप्ति भी होती है। भारत में कुछ हद तक इन्हें दुग्ध-उत्पादन के लिए भी पाला जाता है। भारतीय भेड़ों से ऊन और मांस उत्पादन विदेशी भेड़ों की तुलना में बहुत कम होता है। जहां एक विदेशी भेड़ से प्रति वर्ष उन्नत किस्म की 5-6 किलोग्राम ऊन मिलती है वहीं भारतीय भेड़ से केवल एक से डेढ़ किलोग्राम ऊन ही प्राप्त होती है जिससे मोटे कम्बल, गलीचे आदि बनाए जाते हैं। यही दशा मांस उत्पादन की है जहां विदेशी भेड़ों के एक मेमने से 6 माह की उम्र में 20-25 किलोग्राम मांस प्राप्त होता है, वहीं भारतीय भेड़ों के मेमनों से अधिक से अधिक 10-15 किलोग्राम मांस ही मिलता है। भारतीय भेड़ों से मांस व ऊन कम प्राप्त होने के कई कारण हैं जिनमें अधिक उत्पादन देने वाली भेड़ की नस्लों की कमी, अपर्याप्त पोषण और समुचित चिकित्सा व्यवस्था का अभाव प्रमुख हैं। भेड़ पालन में विश्व में आस्ट्रेलिया, रूस, अर्जेन्टाइना, न्यूजीलैंड तथा दक्षिणी अफ्रीका के बाद भारत का स्थान है। भारत में भेड़ पालन व्यवसाय देश के उन्हीं राज्यों में किया जा रहा है जहां सघन खेती और अन्य पशु व्यवसाय सम्भव नहीं हैं। ऊन का निर्यात किया जाता है जिससे विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। भेड़पालन को लाभदायक व्यवसाय कैसे बनाया जाए इस लेख में इसी पर विचार किया गया है।

भेड़ की नस्लें

भारत में पाई जाने वाली भेड़ों की प्रमुख नस्लों को स्थान के आधार पर कई वर्गों में रखा जाता है:

(क) हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली नस्लें

(ख) उत्तर-पश्चिमी नस्लें

(ग) दक्षिणी नस्लें

(घ) विदेशी एवं संकर नस्लें

(क) हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली नस्लें :

- भादरवाह भेड़
- भाकरवाल भेड़
- गुरेज भेड़
- रायपुर बुंशयार भेड़
- करनाह भेड़

(ख) उत्तरी-पश्चिमी नस्लें

लोही: राजस्थान में इस वर्ग की भेड़ों को निम्न स्थानीय नामों से भी पुकारा जाता है।

जैसलमेरी : जैसलमेर एवं जोधपुर जनपदों में मिलती है।

सोनाड़ी : उदयपुर एवं जयपुर जनपदों में पाई जाती है।

मालपुरी : उदयपुर एवं टोंक जनपदों में मिलती है।

- जालौनी
- कठियावाड़ी
- मारवाड़ी
- बीकानेरी
- कच्छी
- नाली
- पूगल

(ग) दक्षिणी नस्लें

- नीलोर
- हसन
- मंडिया
- बैलारी

(घ) विदेशी एवं संकर नस्लें

- लिलिस्टर
- साऊथडान
- मैरिनों
- हिसार डेल
- अन्य संकर भेड़ें
- काराकूल

(ड) पूर्वी नस्लें

यद्यपि देश की कुल भेड़ों की आठ प्रतिशत भेड़ें इसी भाग में पाली जाती हैं। लेकिन इन्हें पालने का मुख्य उद्देश्य मांस प्राप्त करना होता है। इन भेड़ों में शाहाबादी और नागपुरी नस्लें प्रमुख रूप से आती हैं।

ऊन सही समय पर उतारें

उन्नत प्रजाति की भेड़ों की ऊन साल में दो बार उतारनी आवश्यक होती है, जबकि बीकानेर में भेड़ों से ऊन साल में तीन बार कतरी जाती है। हर साल पहली बार भेड़ों से ऊन फरवरी-मार्च में (होली के आस-पास) और दूसरी बार अक्तूबर-नवम्बर में (दीपावली के आस-पास) कतरी जाती है। बीकानेर क्षेत्र में रक्षा-

बंधन पर ऊन की एक कतरन ली जाती है। इस प्रकार बीकानेर क्षेत्र में होली, रक्षाबन्धन व दीपावली के दिनों में ऊन की कतरनें ली जाती हैं और ऊन की बिक्री भी इन्हीं त्यौहारों के अवसर पर ही की जाती है। इस प्रकार त्यौहारों पर प्राप्त आय के कारण वे लोग खुशहाली का अनुभव प्राप्त करते हैं। गर्मी की ऊन जो रक्षाबन्धन पर कतरी जाती है पसीने के कारण अधिक पीली हो जाती है। इस कारण उसका बाजार भाव गिर जाता है। जहां पर दो कतरनें ली जाती हैं वहां दूसरी कतरन पहली की अपेक्षा कुछ सस्ती बिकती है।

ऊन से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए निम्न तकनीक का उपयोग करना चाहिए। भेड़ों को कतरने से एक-दो दिन पहले धूप में पानी से भली-भांति धोएं ताकि ऊन का कचरा निकल जाए और वह अधिक सफेद और चमकीली हो जाए।

- कैंचियों की धार लगवा कर स्वयं ऊन कतरें ताकि लम्बी ऊन कतरे और भेड़ों पर घाव नहीं लगे और कतराई पर भी व्यर्थ का खर्च न करना पड़े।
- बेचने से पूर्व ऊन की लानियां बनाकर ऊन का सूखे और सुरक्षित स्थान पर भण्डारण करें।
- अलग-अलग कतरनों की ऊन अलग-अलग रखें और अलग-अलग ही बेचें।

अधिक आय के लिए सहयोगी विधि

बूढ़ी भेड़ों और अनावश्यक भेड़ों को मांस के उपयोग के लिए वेचते रहें। इन्हें बेचने से पूर्व यदि इनकी ऊन कतर लेंगे तो कुल आय में निश्चित रूप से वृद्धि होगी। भेड़ तथा ऊन विपणन मण्डल को तोल के हिसाब से बेचना चाहिए। अनावश्यक नर मेमनों का वधियाकरण करवाने से उनके भार में जल्दी वृद्धि होती है। उनके वजन बढ़ने से निश्चित रूप से लाभ में वृद्धि होती है।

भेड़ें कैसी हों ?

आपकी भेड़ों के झुण्ड में एक ही नस्ल की भेड़ें और उसी नस्ल के मेढ़े होने चाहिए ताकि जो भी मेमने पैदा हों वे भी उसी नस्ल के हो और तभी उनसे प्राप्त होने वाली ऊन की गुणवत्ता भी समान होगी।

अधिक प्रजनन आवश्यक एवं सम्भव

चालीस भेड़ों के झुण्ड के लिए कम से कम एक मेढ़ा होना नितान्त आवश्यक है। प्रजनन के लिए उपयोगी मेढ़ों को प्रजनन काल के एक माह पूर्व से प्रजनन काल की समाप्ति तक 250 ग्राम दाना प्रतिदिन देना बहुत जरूरी होता है। दाना बनाने के लिए गवार की चूरी, गेहूं का चापड़, खल आदि का मिश्रण काम में लाया जाता है। ये सभी पदार्थ अन्य अन्न के मुकाबले में सस्ते भी मिलते हैं और इनमें मेढ़ों को सभी आवश्यक व पौष्टिक तत्व भी मिल जाते हैं। इस दाने में एक प्रतिशत नमक और दो प्रतिशत खनिज लवण मिला लेना चाहिए।

प्रजनन काल में मेढ़े को मुट्ठी भर गुड़ भी प्रतिदिन खिलाते रहना चाहिए। इससे मेढ़े बलिष्ठ रहेंगे।

मेमनों की देख-रेख

मेमनों को पैदा होते ही, मां का दूध पिलाएं क्योंकि ऐसा करने से उन्हें रोग नहीं लगते हैं। यदि किसी कारण भेड़ मेमना देने के वाद मर जाए, तो उसको नयी ब्याही भेड़ का दूध पिलाना चाहिए।

रोगों से बचाव

यदि कोई भेड़ बीमार हो जाए तो उसका तुरन्त इलाज करवाएं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि भेड़ों में कोई रोग लगे ही न इसके लिए भेड़ पालकों को चाहिए कि वे अपनी भेड़ों को गर्मी की वरसात से पूर्व फड़किया रोग के टीके लगवाएं और सर्दी की बरसात से पूर्व माता और फड़किया से बचाव के टीके 15 दिन के अन्तराल पर लगवायें। ये टीके काफी सस्ते होते हैं, जिन्हें भेड़ एवं ऊन प्रसार केन्द्रों पर लगवाया जा सकता है। इन दोनों बीमारियों के अलावा एक अन्य घातक बीमारी है उसे "गलतिया बीमारी" कहते हैं। इस बीमारी की दवा प्रसार केन्द्रों द्वारा भेड़ों को निशुल्क पिलाई जाती है। इस बीमारी के लिए निलवर्म या क्यूरामिन्थ दवाई भी अच्छी है। इसके अलावा पानाकुर दवा का उपयोग भी किया जा सकता है। दवा की कितनी मात्रा दी जाए उसका उल्लेख निम्न सारणी में दिया गया है :

सारणी – प्रति भेड़ दवाई की मात्रा

क्रम सं.	दवा का नाम	खुराक प्रति भेड़
1.	निलवर्म	1 ग्राम
2.	क्यूरामिन्थ	1 ग्राम
3.	पानाकुर	0.6 ग्राम

स्रोत–भेड़पालन–एक लाभदायक व्यवसाय–पृष्ठ 6 से साभार

शेष पृष्ठ 36 पर

बाल विकास के सार्थक प्रयास

✍ कमलेश त्रिपाठी

आज का बच्चा ही कल का राष्ट्रनिर्माता है। इसलिए अन्ततः बाल्यावस्था ही किसी राष्ट्र के भावी विकास की सम्भावनाओं का मार्ग प्रशस्त करती है। यही वजह है कि भारतीय संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत यह संकल्प किया गया है, "राज्य अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों और बालकों को स्वतंत्र एवं गरिमापूर्ण वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं प्रदान की जाएं। बालकों और अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाय।"

संविधान की इसी प्रतिबद्धता का अनुसरण करते हुए भारत सरकार ने वर्ष 1974 में राष्ट्रीय बाल नीति तय की। इस नीति में राष्ट्र के बच्चों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्पदा घोषित किया गया। इस नीति में की गयी घोषणा के अनुसार "राज्य की यह नीति होगी कि बच्चों को उनके जन्म से पूर्व तथा जन्म के पश्चात विकास अवधि के दौरान पर्याप्त सेवाएं उपलब्ध करायी जाएंगी, जिससे उनका सर्वांगीण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास हो सके। राज्य ऐसी सेवाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि करेगा जिससे कि उचित समय में देश के सभी बच्चों को उनके संतुलित विकास के लिए परिस्थितियां उपलब्ध हों।"

इस नीति के तहत भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय का महिला एवं बाल विकास विभाग समन्वित बाल विकास सेवाओं का एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम क्रियान्वित कर रहा है। इस कार्यक्रम में अत्यधिक पिछड़े हुए ग्रामीण लोगों, आदिवासी लोगों और शहरी तंग बस्तियों में रहने वाले 0-6 वर्ष की आयुवर्ग के बच्चों और गर्भवती एवं शिशुवती माताओं की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित की जाती है। समन्वित बाल विकास सेवा के अंतर्गत सेवाओं में स्वास्थ्य जांच, टीकाकरण, चिकित्सकीय परामर्श सेवाएं, पूरक पोषाहार, 3-6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों को स्कूल-पूर्व शिक्षा तथा स्वास्थ्य और महिलाओं को पोषाहार शामिल है। इस समय पूरे देश में कुल 3,066 समन्वित बाल विकास सेवा परियोजनाएं चल रही हैं जिनसे एक करोड़, 63 लाख बच्चों तथा 32 लाख माताओं को लाभ प्राप्त हो रहा है।

राष्ट्रीय बाल कार्य योजना (1992) और राष्ट्रीय बालिका कार्य योजना (1991-2000) भी तैयार की गयी है। ये दोनों कार्य योजनाएं बच्चों का संरक्षण और विकास सुनिश्चित करने के लिए समन्वित और बहुक्षेत्रीय हैं। इनका उद्देश्य बच्चों के बेहतर भविष्य का निर्माण करना है। हालांकि लक्ष्य वर्ग का एक अभिन्न अंग होने के कारण भी बालिकाओं को सामान्य कार्य योजना का पूरा लाभ मिलने की उम्मीद है, फिर भी उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति एक अलग कार्य योजना द्वारा की जाएगी जिसमें किशोर वय की लड़कियों पर अधिक ध्यान दिया जाएगा। समेकित बाल विकास सेवा के माध्यम से अब उपेक्षित किशोर लड़कियों, खासकर उन लड़कियों को जो स्कूली पढ़ाई बीच में ही छोड़ देती हैं, कुछ विशेष सेवाएं प्रदान की जाती हैं। इन सेवाओं में स्वास्थ्य और पोषाहार देखभाल, कार्यसाधक साक्षरता और व्यावसायिक प्रशिक्षण शामिल हैं। इन सेवाओं को 507 समन्वित बाल विकास सेवा खण्डों में लागू किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के पूरा होने पर 11-18 वर्ष आयु वर्ग की साढ़े चार लाख किशोर लड़कियों को लाभ होगा।

बच्चों के सम्बन्ध में आंकड़े उत्साहवर्धक प्रवृत्ति दर्शाते हैं। उदाहरणस्वरूप 1960 में शिशु मृत्यु दर जहां प्रति हजार 146 थी वह 1990 में घटकर प्रति हजार सिर्फ 80 रह गयी। सन् 2000 तक यह दर घटकर प्रति हजार 60 करने का लक्ष्य है। प्राथमिक स्कूलों में भर्ती की दर जो 1951 में 38 प्रतिशत थी, 1989 में बढ़कर 94 प्रतिशत हो गयी। परन्तु गरीबी के कारण कई समस्याएं विद्यमान हैं। उदाहरण के तौर पर हर वर्ष जन्म लेने वाले बच्चों में से 30 प्रतिशत बच्चों का वजन औसत से कम होता है। कुपोषण के कारण अतिसार, निमोनिया, टिटनेस तथा खसरा से होने वाली बच्चों की मृत्यु ने गम्भीर रूप ले लिया है। छह वर्ष से कम आयु के बच्चों में लगभग 52 प्रतिशत बच्चे प्रोटीन की कमी के शिकार हैं, इनमें से 10 प्रतिशत तो गम्भीर कुपोषण के शिकार हैं।

विटामिन "ए" की कमी से सम्भवतः अन्य कुप्रभाव भी पड़ता है। प्रत्येक वर्ष लगभग 40 हजार बच्चे कुपोषण के कारण दृष्टिक्षीणता से पीड़ित होते हैं। गर्भाधान आयु की लगभग 70 प्रतिशत महिलाएं गंभीर रक्तक्षीणता की शिकार हैं। आयोडीन की कमी भी काफी अधिक फैली हुई है।

केन्द्र सरकार की समन्वित बाल विकास सेवा परियोजना में पूरक पोषाहार को छोड़कर शेष सारा व्यय राज्यों को केन्द्र द्वारा अनुदान सहायता के रूप में दिया जाता है। यदि पूरक पोषाहार किसी अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य सहायता कार्यक्रम के अंतर्गत नहीं है तो उसका खर्च राज्य सरकारें वहन करती है। वर्ष 1993-94 में सरकार ने इस मद में 408.55 करोड़ रुपये आवंटित किये।

भारत सरकार ने राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान के माध्यम से समेकित बाल विकास सेवा परियोजना का राष्ट्रीय स्तर पर मूल्यांकन कराया। इस मूल्यांकन में सकारात्मक तथा कमजोर दोनों ही पहलू उजागर हुए। उदाहरण के लिए परियोजना के क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर गैर परियोजना क्षेत्रों से काफी कम रही। बावजूद इसके समन्वित बाल विकास सेवा में लोगों की भागीदारी की कमी दिखाई दी जिसे दूर करने के लिए विशेष प्रयास जरूरी हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल विकास कोष, यूनिसेफ इस कार्यक्रम के लिए परामर्श सेवाएं, प्रशिक्षण, कुछ उपकरण तथा अनुसंधान के क्षेत्र में सहायता प्रदान करता है। इस सहायता में पोषाहार तथा आंगनवाड़ियों के निर्माण पर होने वाला व्यय शामिल है। इसके अलावा विश्व बैंक भी समन्वित बाल विकास परियोजनाओं के लिए सहायता दे रहा है। ऐसी दो परियोजनाएं एक आंध्र प्रदेश तथा उड़ीसा के आदिवासी बहुल सूखाग्रस्त क्षेत्रों में तथा दूसरी बिहार तथा मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में चल रही है। पहली परियोजना पर 303.22 करोड़ तथा दूसरी पर 596.23 करोड़ रुपये के खर्च का प्रावधान है।

देश में बेसहारा बच्चों की तादाद भी काफी अधिक है। इनकी समस्या बेहद जटिल है। कल्याण मंत्रालय ने बेसहारा बच्चों के कल्याण की नयी योजना शुरू की है। इस योजना में गलियों या फुटपाथों पर अकेले या परिवार के साथ रहने वाले बच्चों की देखभाल और विकास संबंधी मूल सेवाएं प्रदान करने की व्यवस्था है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में उसके लिए आठ करोड़ रुपये की धनराशि आवंटित की गयी है। पहले चरण में यह योजना 40 स्वयंसेवी संगठनों के माध्यम से क्रियान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत देश के घनी आबादी वाले शहरों में करीब 240 केन्द्रों के माध्यम से 24 हजार बच्चों को लाभ दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग बच्चों के लिए कई योजनाएं सफलतापूर्वक चलायी जा रही हैं।

राष्ट्रीय बाल नीति के प्राथमिक लक्ष्यों में कामकाजी तथा बीमार महिलाओं के बच्चों के लिए शिशुगृह (दिवस देखभाल केन्द्र) की स्थापना प्रमुख है। यह योजना 1975 में प्रारम्भ की गयी। इसका मुख्य उद्देश्य मुख्यतया कैजुअल, प्रवासी, कृषि और निर्माण कार्य से जुड़े श्रमिकों के 0-5 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए दिवस देखभाल सेवाएं उपलब्ध कराना है। बीमार अथवा बीमारी के कारण अक्षम महिलाओं के बच्चों को भी इस योजना में शामिल किया गया है। यह योजना आर्थिक रूप से निम्न वर्ग के लिए तैयार की गयी है। इससे सिर्फ उन बच्चों को लाभ मिलता है जिनके माता-पिता की सम्मिलित आय 1800 रुपये मासिक से अधिक न हो। इस योजना में बच्चों के शयन, दिन भर की देखभाल, पूरक पोषाहार, टीकाकरण, चिकित्सा, मनोरंजन और साप्ताहिक डाक्टरी जांच शामिल है। शिशुगृह कार्यकर्ताओं का मानदेय भी अब 500 रुपये से बढ़ाकर 800 रुपये तथा पूरक पोषाहार की दर 65 पैसे प्रति बच्चे से बढ़ाकर 1.05 रुपये प्रति बच्चा कर दी गयी है।

बाल विकास कार्यक्रमों के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं को पुरस्कृत भी किया जा रहा है। इस दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष (1979) में राष्ट्रीय बाल कल्याण पुरस्कारों की स्थापना की गयी। ये पुरस्कार प्रति वर्ष तीन व्यक्तियों तथा पांच संस्थाओं को दिये जाते हैं। व्यक्ति के मामले में पुरस्कार राशि 50 हजार रुपये प्रतिव्यक्ति तथा संस्था के मामले में प्रत्येक संस्था को दो लाख रुपये प्रदान किये जाते हैं। भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय बाल कोष की भी स्थापना की है। इस कोष से निराश्रित बच्चों के पुनर्वास और कल्याण कार्यक्रमों में लगी राष्ट्रीय, राज्य और जिला स्तर की स्वयंसेवी संस्थाओं को अनुदान प्रदान किया जाता है। स्वयंसेवी संगठनों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता परियोजना लागत के 90 प्रतिशत के बराबर होती है।

इसके साथ ही वीरता, पराक्रम एवं सराहनीय कार्यों के लिए बच्चों को पुरस्कृत किया जाता है। इसके लिए 1957 में राष्ट्रीय वीरता पुरस्कार की स्थापना की गयी। अब तक करीब 450 बच्चों को पुरस्कृत किया जा चुका है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

ग्रामीण विकास में बैकों की भूमिका

✍ सत्यपाल मलिक

भारत की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है जिनमें ज्यादातर लोग गरीब हैं। अतः ग्रामीण विकास, गरीबी उन्मूलन तथा बेरोजगारी की समस्या को दूर करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में विशेष प्राथमिकता दी गई। आठवीं योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन है। इस दिशा में बैंक, विशेषकर ग्रामीण बैंक, अहम भूमिका निबाह सकते हैं।

हमारे देश में संस्थागत ग्रामीण वित्त की समस्या के समाधान हेतु समय-समय पर उपाय किए गए हैं। सहकारी बैंकों की स्थापना के अलावा एक महत्वपूर्ण कदम 1955 में भारतीय स्टेट बैंक की स्थापना करके उठाया गया। सन् 1969 में सरकार द्वारा 14 निजी व्यावसायिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का उद्देश्य भी बैकों की ग्रामीण क्षेत्रों में साख तथा बैकिंग सुविधाओं का विस्तार करना था। ग्रामीण क्षेत्रों के लघु एवं सीमांत किसानों खेतीहर मजदूरों, ग्रामीण दस्तकारों और छोटे उद्यमियों की आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने के लिए तथा उन्हें महाजनों और भू-पतियों के शोषण के दूषित चक्र से आजाद कराने के लिए 2 अक्तूबर, 1975 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का उद्भव हुआ। इसी कड़ी में 2 जुलाई, 1982 को एक शीर्ष संस्था—राष्ट्रीय कृषि एवं विकास बैंक (नाबार्ड) –की स्थापना की गई।

राष्ट्रीयकरण के पश्चात बैंकिंग प्रणाली का तेजी से विस्तार हुआ तथा नई शाखाएं खोलते समय इस बात पर विशेष ध्यान दिया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकाधिक बैंकिंग सुविधा उपलब्ध कराई जाए।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लिए ऋण

राष्ट्रीयकरण के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को एक मुख्य कार्य यह सौंपा गया कि वे अर्थ व्यवस्था के अब तक उपेक्षित क्षेत्रों के छोटे कर्जदारों को ऋण सम्बन्धी सुविधाएं उपलब्ध कराएं। अतः ऋण देने में कमजोर वर्ग को प्राथमिकता के सिद्धान्त पर व्यापक जोर दिया गया। इसमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लाभार्थियों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम गरीबी हटाने के लिए सरकार का एक प्रमुख कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य छोटे एवं मझौले किसानों, कृषि मजदूरों, गांव के कारीगरों तथा अन्य गरीब वर्गों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने में मदद करना है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत गरीब परिवारों का पता लगाया जाता है और उन्हें आय के साधन जुटाने के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। संस्थागत ऋण व्यावसायिक बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा दिया जाता है। 1991-92 में बैंकों ने 1036.8 करोड़ रुपये के ऋण दिए। इसमें से व्यावसायिक बैंकों द्वारा 625.82 करोड़ रुपये (60 प्रतिशत) और सहकारी बैंकों द्वारा 154.92 करोड़ रुपये (15 प्रतिशत) तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा 256.06 करोड़ रुपये (25 प्रतिशत) के ऋण वितरित किए गए।

कृषि और कृषि संबंधित गतिविधियों, ग्रामीण उद्योग और व्यवसाय सम्बन्धित विभिन्न कार्यक्रमों के साथ-साथ सरकार ने कुछ ऐसे कार्यक्रम शुरू किए जिससे कि लाभार्थी को सीधे ऋण की सुविधा और रोजगार प्राप्त हो सके। इनमें शिक्षित बेरोजगार युवकों हेतु रोजगार योजना, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रधानमंत्री की रोजगार योजना एवं सुनिश्चित रोजगार योजना आदि प्रमुख हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

ग्रामीण लोगों को बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए और विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां बैंकिंग सुविधाएं नहीं थीं, वहां ये सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 2 अक्तूबर 1975 से ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना की गई। इन बैंकों का कार्य समाज के उन कमजोर वर्गों को रियायती ब्याज दरों पर संस्थागत ऋण उपलब्ध कराना है जो मजबूरी में निजी साहूकारों से ऋण लेते थे। ये बैंक मुख्यतया अल्पावधि और मध्यकालीन ऋण उपलब्ध कराते हैं जिसका उपयोग बीज, खाद, फसल बोने से काटने तक की अवधि में किये गये व्यय, पशुधन खरीदने और पशुओं की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा कृषि उपकरणों की मरम्मत आदि कार्यों के लिए किया जाता है। ये ऋण मुख्यतया छोटे व सीमान्त किसानों और कृषि मजदूरों, कारीगरों, छोटे उद्यमियों और व्यापार तथा उत्पादन कार्यकलापों में लगे हुए व्यक्तियों को प्रदान किए जाते हैं।

लक्ष्य की दृष्टि से देखा जाए तो बैंकों के करोबार को सुदूर क्षेत्रों में पहुंचाने तथा ग्रामीण साख का विस्तार करने में ये बैंक पूर्णतः सफल रहे हैं। देशभर में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 14,511 शाखाओं में से 92 प्रतिशत शाखाएं उन क्षेत्रों में खोली गयी हैं जहां या तो कोई बैंक नहीं था अथवा और बैंक शाखा खोले जाने की जरूरत थी। अपने लक्ष्य में सफल होने पर भी ये बैंक अस्तित्व के संकट में फंसे रहे हैं जिसका सबसे बड़ा कारण है मुनाफे का अभाव। वर्तमान में 196 में से 150 ग्रामीण बैंक हानि दिखा रहे हैं। ग्रामीण बैंकों की दूसरी असफलता वसूली के क्षेत्र में है। जमा संग्रह में भी इन बैंकों को सीमित सफलता ही मिली है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को सुधारने के लिए ढांचागत सुधार जरूरी है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने इन बैंकों के वास्ते कुछ उपायों की पहले ही घोषणा की है। चालू वर्ष के बजट में कहा गया है कि 196 में से 50 बैंकों का चयन किया जायेगा जिनकी बैलेंस शीटों को परिमार्जित करने और उनमें अतिरिक्त पूंजी लगाने का प्रस्ताव है। इन 50 बैंकों के अनुभव को मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में लिया जायेगा। इन उपायों से गांवों में बैंकिंग प्रणाली मजबूत हो सकेगी और कमजोर एवं रुग्ण ग्रामीण बैंक वित्तीय रूप से सक्षम बन जायेंगे।

राष्ट्रीय कृषि एवं विकास बैंक (नाबार्ड)

समन्वित ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से जुलाई 1982 में नाबार्ड की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि, लघु उद्योग, कुटीर तथा ग्रामीण उद्योग, हस्तशिल्प व अन्य ग्रामीण दस्तकारियों तथा अन्य आर्थिक गतिविधियों के संवर्धन के लिए ऋण उपलब्ध कराना है ताकि ग्रामीण क्षेत्रों को खुशहाल बनाया जा सके। इस शीर्ष संस्था के मुख्य कार्य इस प्रकार हैं :

- ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न विकास कार्यक्रमों के लिए निवेश व उत्पादन ऋण देने वाली संस्थाओं की शीर्ष पुनर्वित (रीफाईनानासिंग) एजेंसी के रूप में कार्य करना।

- पुनर्वास योजनाएं तैयार करना, उनकी मानीटरिंग करना, ऋण उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं का ढांचा सुधारने और कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के साथ-साथ ऋण वितरण प्रणाली की क्षमता बढ़ाने के लिए संस्थागत व्यवस्था विकसित करने के उपाय करना।

- क्षेत्र स्तर पर विकास कार्य में लगी सभी संस्थाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में की जा रही वित्तीय व्यवस्था में तालमेल विठाना और राज्य सरकारों, भारतीय रिजर्व बैंक व नीति निर्माण से सम्बद्ध स्तर की अन्य संस्थाओं से सम्पर्क बनाए रखना।

भारत सरकार द्वारा बनाए गए विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को नाबार्ड के माध्यम से ही अन्य बैंकों द्वारा गरीबों तक पहुंचाया गया है। वर्ष 1994-95 के बजट में नाबार्ड की शेयर पूंजी को बढ़ाने के लिए 100 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। इतनी ही राशि भारतीय रिजर्व बैंक भी उपलब्ध कराएगा। इस व्यवस्था से नाबार्ड की शेयर पूंजी अब तिगुनी हो जायेगी। यह ग्रामीण ऋण प्रणाली को मजबूत बनाने में रचनात्मक योगदान कर सकेगी।

बदलते आर्थिक परिवेश में ग्रामीण बैंकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसा विश्वास किया जा रहा है कि आर्थिक सुधारों के दौर में ग्रामीण बैंक जहां ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे वहीं नाबार्ड के निर्देशन में अपने कार्यों में गुणात्मक सुधार भी ला सकेंगे।

जेड पी-13, मौर्या एनक्लेव,
पीतमपुरा, दिल्ली

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि भेजिये। रचनाएं दो प्रतियों में टाइप की हुई हों और उनके साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो अन्यथा उन्हें स्वीकार करना संभव नहीं होगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजें।

ग्रामीण विकास में परिवहन साधनों की भूमिका

✍ डा. शिवा कान्त सिंह

प्राचीन काल से ही लोग सिर पर या पीठ पर लादे गए भार की तुलना में अधिक भार ढोने करने के उद्देश्य से वस्तुओं को लकड़ी पर रखकर खींचते थे। धीरे-धीरे उन्हें यह आभास हुआ कि यदि इसमें कोई गोलाकार पहिया लगाया जाए तो भार खींचना आसान होगा। इस प्रकार आज हमें ग्रामीण क्षेत्रों में जो बैलगाड़ी देखने को मिलती है वे उसी का परिष्कृत रूप है। धीरे-धीरे आधुनिक युग में बैलगाड़ी का स्थान "डनलप" लेता जा रहा है क्योंकि इसमें पहिया लकड़ी का न होकर, टायर-ट्यूब का होता है तथा यह बीयरिंग पर चलता है, जिसके कारण बैलों द्वारा उतने ही बल से काफी अधिक माल ढोया जा सकता है। परन्तु बैलगाड़ी की तुलना में काफी मंहगा होने के कारण प्रायः सामान्य किसान इसका उपयोग नहीं कर पाते हैं।

आश्चर्य इस बात का है कि प्राचीन काल से लेकर अभी तक की बैलगाड़ियों की बनावट आदि में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है, चाहे ये मोहनजोदड़ो और हड़प्पा युग की हों या सिंधु घाटी सभ्यता की हों या वर्तमान युग की। सस्ती व सरल तकनीक पर आधारित होने के कारण तथा पशु द्वारा चालित होने के कारण, इसकी प्रासंगिकता सदियों से कायम रही है तथा आधुनिक युग में भी इसका कोई विकल्प मौजूद नहीं है। यह एक ऐसा परिवहन साधन है जिसे ऊर्जा संकट का कठिनतम दौर भी प्रभावित नहीं कर सका। इस प्रकार इस परिवहन साधन ने अपनी उपयोगिता को नए सिरे से अंजाम दिया है।

एक मध्यमवर्गीय कृषक के लिए बैलगाड़ी एक महत्वपूर्ण साधन है क्योंकि यह खाद को खेतों तक पहुंचाने से लेकर तैयार फसल को घर पर लाने और उसे बाजार तक ले जाने आदि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसमें किसी भी मौसम या रास्ते में सुगमता से चल सकने की क्षमता निहित है तथा इसे आसानी से चलाया जा सकता है अर्थात् इसमें किसी विशेष दक्षता की आवश्यकता नहीं होती। जहां एक बैलगाड़ी ने अपनी विभिन्न विशेषताओं के माध्यम से ग्रामीण विकास में अपना विशेष योगदान दिया है वहीं सड़कों ने भी, विकास में चार चांद लगाए हैं। ग्रामीण सड़कें ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ग्रामीण सड़कों से तात्पर्य किसी टिप-टाप सड़क से नहीं, बल्कि एक ऐसी सड़क से है जो कि ग्रामीण क्षेत्रों को मुख्य सड़क से सम्पर्क मार्ग के रूप में जोड़ सके। ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का विकास करके ही कृषि उत्पादों को मंडियों तक आसानी से पहुंचाया जा सकता है तथा कृषकों को उनकी फसल का समुचित मूल्य दिलाया जा सकता है। सम्पर्क मार्ग टूटा होने के कारण ग्रामीणों को विक्रय का समुचित लाभ नहीं मिल पाता और वे स्थानीय साहूकारों के शोषण का शिकार होते रहते हैं।

व्यापारिक फसलों को प्रोत्साहित करने में भी, ग्रामीण सड़कों की भूमिका प्रमुख है। उदाहरणार्थ गन्ना, कपास, सोयाबीन, मूंगफली तथा फलोत्पादन आदि के उत्पादक क्षेत्र इसका जीता-जागता उदाहरण हैं। सड़कों के माध्यम से इन फसलों को सुगमतापूर्वक बाजार तक पहुंचाया जाता है तथा फसलों का समुचित लाभ लिया जाता है।

इस प्रकार यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि ग्रामीण सड़कें धमनियों के समान कार्य करती हैं अर्थात् जिस प्रकार शरीर में रक्त-संचार धमनियों के द्वारा होता है उसी प्रकार ग्रामीण सड़कें परिवहन साधनों को आधार देकर अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाती हैं। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि 'सड़कें विकास की धुरी' हैं।

उपरोक्त तथ्यों के अलावा 'जागरूकता' एक ऐसा कारक है, जो कि विकास को तथा विकास की प्रक्रिया को सर्वाधिक प्रभावित करता है। जागरूक व्यक्ति से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो किसी कार्य को करने से पूर्व उनके परिणामों का गंभीरता से मनन करता हो तथा उसकी सोच आधुनिकता की ओर हो अर्थात् परम्परागत फसलों के साथ-साथ ऐसी फसलों की ओर आकर्षित होता हो जिनसे अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्राप्त हो सके। क्योंकि एक जागरूक कृषक ही अच्छे बीज, रासायनिक खाद, सिंचाई आदि का प्रयोग करके अपेक्षाकृत अच्छी फसल प्राप्त करता है।

वर्तमान में ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत

शेष पृष्ठ 36 पर

गाजरः आहार भी औषध भी

डा० विजय कुमार उपाध्याय

प्राध्यापक, भूगर्भ
इंजिनियरी कालेज, भागलपुर

गाजर एक सुपरिचित कन्द है जो जाड़े के मौसम में भारत के लगभग हर कोने में पाया जाता है। वनस्पति शास्त्र के दृष्टिकोण से यह अम्बेलिफेरा परिवार का एक सदस्य है। गाजर दो किस्म की होती है। एक लाल तथा दूसरी काली। इसकी आकृति सामान्य तौर पर शंकुनुमा होती है, परन्तु कहीं-कहीं गांठदार किस्म भी पाई जाती है। सामान्यतया इसकी अधिकतम लम्बाई दस बारह सेंटीमीटर तक होती है। परन्तु कभी-कभी 25-30 सेंटी मीटर लम्बी गाजर भी पाई जाती है।

अनुमान है कि गाजर भारत, अफगानिस्तान तथा एशिया के कई देशों में पाई जाती है। ऐतिहासिक अभिलेखों से पता चलता है कि गाजर की खेती भूमध्य सागर क्षेत्र के देशों में ईसा से पूर्व भी कि जाती थी। जर्मनी, चीन तथा फ्रांस में इसका उत्पादन ईसा बाद तेरहवीं शताब्दी में शुरू किया गया। इंग्लैंड में इसकी खेती सत्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ की गई। अमरीका में भी इसी समय के आस-पास गाजर पहुंची। जब लोगों को इसमें विटामिन ए की उपस्थिति की जानकारी मिली तो संयुक्त राज्य अमरीका में सन् 1920 के बाद इसका उपयोग व्यापक स्तर पर किया जाने लगा है। आजकल समशीतोष्ण देशों में गाजर की खेती काफी अधिक की जाने लगी है। यूरोप, अमरीका तथा अन्य कई देशों में जंगली गाजर भी पाई जाती है।

गाजर अनेक खनिजों तथा विटामिनों से भरपूर रहती है। इसके रासायनिक विश्लेषण से पता चला है कि इसमें 86 प्रतिशत जल, 10.7 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 0.9 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2 प्रतिशत वसा, 0.53 प्रतिशत फास्फोरस और 0.08 प्रतिशत कैल्शियम होता है। इसके अतिरिक्त इसमें विटामिन ए तथा विटामिन बी होते हैं। गाजर में अल्प मात्रा में सोडियम, पोटेशियम, मैग्नेशियम, तांबा तथा क्लोरिन इत्यादि तत्व भी मौजूद रहते हैं। विटामिन सी., डी. तथा ई. भी थोड़ी मात्रा में पाए जाते हैं। गाजर में कैल्शियम की मात्रा कई अन्य फलों और कंदों की तुलना में काफी अधिक है। उदाहरण के तौर पर आलू की अपेक्षा गाजर में लगभग छः गुना कैल्शियम उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त विटामिन ए भी कई फलों की तुलना से गाजर में काफी अधिक पाया जाता है।

गाजर का उपयोग कई तरह से किया जाता है। इसे आमतौर पर सलाद के रूप में या दांत से काटकर खाया जाता है। इसका हलवा काफी स्वादिष्ट, सुपाच्य तथा लाभदायक होता है। गाजर को महीन पीसकर या जूसर से अथवा कपड़े से छानकर इसका रस निकाला जा सकता है। यह रस रोगियों को पथ्य के रूप में दिया जाता है। सस्ती होने के कारण एक गरीब आदमी भी इसका सेवन कर सकता है।

चिकित्सा वैज्ञानिकों द्वारा किए गए विभिन्न अध्ययनों से पता चला है कि गाजर सुपाच्य और स्वास्थ्यवर्द्धक है। इसे चबाकर खाने से दांत स्वच्छ और मजबूत होते हैं। इसका नियमित सेवन नेत्रों की बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है। गाजर के रस में टॉकोकिनिन नामक एक रसायन उपस्थित रहता है। इस रसायन के गुण मानव शरीर में निर्मित होने वाले इंसुलिन से मिलते-जुलते हैं। अतः गाजर का रस मधुमेह के रोगियों के लिए काफी अधिक लाभदायक है।

अमरीका में नेशनल कैंसर इंस्टीट्यूट तथा नेशनल हार्ट, लंग एन्ड ब्लड इंस्टीट्यूट नामक संस्थाओं की ओर से गाजर के रस के प्रभाव का अध्ययन लगभग 2000 व्यक्तियों पर किया गया और पाया गया कि गाजर कई रोगों में लाभदायक है। रूस के चिकित्सा वैज्ञानिक डा० मैकनिकॉफ ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया है कि गाजर में कृमिनाशक गुण भी हैं। उनके मतानुसार गाजर का रस आंतों के हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने की क्षमता रखता है। दस्त और आंतों की सूजन में गाजर का रस लाभदायक होता है। इसके नियमित उपयोग से आंतों के घाव ठीक होते हैं। इसी प्रकार गाजर के सेवन से मूत्र संबंधी अनेक बीमारियों में लाभ होता है।

गाजर के रस में यूरिक एसिड नामक पदार्थ मौजूद रहता है जो रक्त से अवांछनीय पदार्थों को दूर रखने की क्षमता रखता है। फलस्वरूप इसके रस का उपयोग गठिया के रोग में लाभदायक पाया गया है। इसके नियमित उपयोग से पिताश्य की पथरी तथा जिगर की बीमारियां ठीक होती हैं। गाजर के रस के लम्बे समय तक उपयोग से कैंसर को नियंत्रित करने में पर्याप्त सफलता मिली है। अमरीका के राबर्ट स्टीकल ने अपना निजी अनुभव बताते हुए लिखा है कि वे एक बार मैलिग्नैंट मेलानोमा से ग्रस्त हो गये थे। दवाओं से निराश होकर उन्होंने गाजर तथा कुछ अन्य फलों के रसों का सेवन प्रारम्भ किया तथा कुछ ही समय बाद वे पूरी तरह स्वस्थ हो गए। भारत के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सा विशेषज्ञ कुलरंजन मुखर्जी ने गाजर के उपयोग को पुरानी पेचिश, दमा, पिताशय की पथरी, उच्च रक्त चाप तथा मधुमेह में अत्यन्त लाभप्रद पाया।

पो०–सबौर,
भागलपुर–813210

पृष्ठ 29 का शेष

भेड़ पालन...

जिन भेड़ों को दस्त लग रहे हों तो उन्हें फी नोविस 4.50 ग्राम या सोनेक्स 5 ग्राम प्रति भेड़ की दर से पिलाएं।

जहां तक चींचड़ो, जूओं और खाज का प्रश्न है, इन की दवा भेड़ व ऊन प्रसार केन्द्रों पर निःशुल्क दी जाती है। उसके लिए अधिक से अधिक "गैमैक्सिन" पाउडर ही उपयोग में लाया जाता है। इसका एक भाग राख के दस भागों में मिलाकर भेड़ों पर रगड़ दें तो चीचड़े और जुएं मर जायेंगी और यदि खाज का रोग है तो वह भी ठीक हो जायेगा।

पेल्ट उत्पादन–एक नवीन प्राद्यौगिकी

ताजे ब्याहे हुए मेमने जो मरते हैं या मारे जाते हैं उनकी खाल से सुन्दर, मजबूत और बहुपयोगी कोट, टोपियां, पर्स आदि अनेक वस्तुएं बनाई जाती हैं और उनके निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है। बीकानेर के बीछवाल क्षेत्र में केन्द्रीय भेड़ व ऊन अनुसंधान केन्द्र इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। भेड़ पालक उपरोक्त सुझावों से अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकते हैं।

संयुक्त सम्पादक 'फसल संदेश',
5 ई 9, बंगला प्लाट,
फरीदाबाद-121001

पृष्ठ 34 का शेष

परिवहन साधनों की...

ग्रामीण लोगों विशेष रूप से गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करने वाले लोगों को लाभान्वित किया जाता है। परन्तु अधिकांश लोग अज्ञानतावश इसका लाभ नहीं उठा पाते। प्रायः लोगों को योजनाओं के विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं होती। अतः कहा जा सकता है कि विकास प्रक्रिया में जागरूकता एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जो विकास को प्रभावित करता है, चाहे वह फसलों के परिवर्तन के संदर्भ में हो या फिर शासन द्वारा संचालित विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं का लाभ लेने के संदर्भ में हो। अतः कहा जा सकता है कि यदि 'सड़कें विकास की धुरी' हैं, तो जागरूकता निश्चित ही उनमें 'पहिये' का काम करती है। अर्थात् सड़क तो विकास का आधार मात्र है, परन्तु विकास को गति देने का कार्य जागरूकता का है। अंततः यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास में किसी एक पहलू का नहीं, बल्कि अनेक पहलुओं का मिला-जुला प्रभाव देखने को मिलता है।

कुमार टाइपिंग इंस्टीट्यूट,
5, सिविल लाइन्स,
सागर (म.प्र.) 470001

जवाहर रोजगार योजना के अंतर्गत 35 नई परियोजनाएं स्वीकृत

सरकार ने जवाहर रोजगार योजना के तीसरे चरण के अंतर्गत अब तक 35 विशेष और अभिनव परियोजनाओं को स्वीकृति दी है।

इन विशेष परियोजनाओं का उद्देश्य गांवों से श्रमिकों के पलायन को रोकना और महिलाओं के लिये रोजगार के अवसर बढ़ाना है। सूखा नियंत्रण और जल संभर विकास के लिए विशेष कार्यक्रमों को चलाने के लिए स्वयंसेवी संगठनों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। कार्यक्रम में दीर्घावधि रोजगार अवसर उपलब्ध कराने और गैर-जवाहर रोजगार योजना संसाधनों के साथ समन्वय पैदा करने पर बल दिया गया है।

इस चरण के अंतर्गत चलाई जा रही परियोजनाओं पर, ग्रामीण विकास मंत्रालय में सचिव की अध्यक्षता में गठित, चयन समिति विचार करती है और उन्हें स्वीकृति प्रदान करती है। चयन समिति ने इस वर्ष राज्य/गैर सरकारी संगठनों की ओर से प्रस्तावित कई परियोजनाओं पर विचार किया। मंत्रालय ने इन परियोजनाओं के सभी पहलुओं पर निगरानी रखने पर भी बल दिया है। ये योजनायें विशेष क्षेत्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्वीकृत की गयी हैं।

वर्ष 1993-94 के दौरान इन परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिये 26 करोड़ 29 लाख रुपये की राशि जारी की गई। 1994-95 के लिए विशेष और अभिनव परियोजनाओं के लिए 75 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गई है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस : यू (डी एन)-55

P & T Regd. No. D(DL) 12057/95
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित